मूल्य : ₹ 30 | मई 2025 | आई.एस.ओ. 9001: 2015 संगठन

भाकृअनुप
ICAR

खेती

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ

• इस अंक में •

सजावटी मछलियों का पालन

कृषि के लिए लाभकारी सौर ऊर्जा योजनाएं

भंडारित अनाज में कीटों द्वारा नुकसान का प्रबंधन

सरसों का जैविक उत्पादन

भाकृअनुप द्वारा वर्ष 2024-25 में जारी उच्च उपज देने वाली जलवायु अनुकूल एवं जैव संवर्धित फसल किस्में

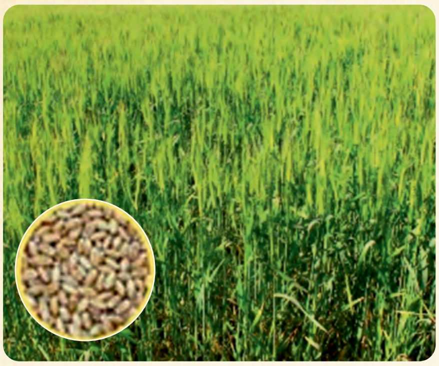

गेहूं-पूसा गेहूं शरबती (एचआई 1665)

मक्का-पूसा पॉपकॉर्न हाइब्रिड-1 (एपीसीएच 2)

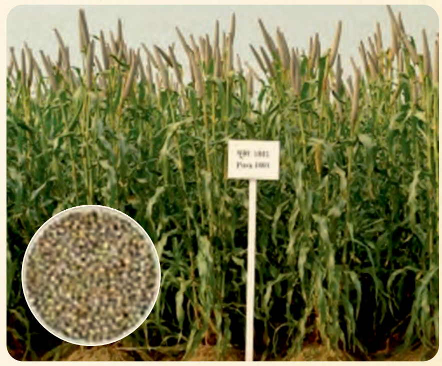

बाजरा पूसा-1801 (एमएच 2417)

मक्का-पूसा HM4 नरबंधय बेबीकॉर्न -2

मूंग-पीएमएस -8

कपास-सीआईसीआर-एच बीटी कपास 40 (आईसीएआर-सीआईएसआर-पीकेवी 081 बीटी)

मूंगफली-आईसीएआर कोणार्क (स्पेनिश बंच)

धान-डीआरआर धान 73 (आईईटी 30242)

अरहर-एनएएम - 88

कुसुम-आईएसएफ-300

मूंग-लैम पेसरा 610 (एलजीजी 610)

स्रोत : भाकृअनुप की वार्षिक रिपोर्ट 2024-25

भाकृअनुप
ICAR

खेती

कृषि विज्ञान द्वारा ग्रामोत्थान की मासिक पत्रिका

वर्ष: 78, अंक: 1, मई 2025

संपादन सलाहकार समिति

1. **डा. राजबीर सिंह** — **अध्यक्ष**
   उप-महानिदेशक (कृषि विस्तार)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
2. **डा. अनुराधा अग्रवाल** — **सदस्य**
   परियोजना निदेशक (डीकेएमए)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
3. **डा. विनोद कुमार सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-क्रीडा, हैदराबाद
4. **डा. धीर सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल
5. **डा. के.के. सिंह** — **सदस्य**
   कुलपति
   सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि विश्वविद्यालय
   मोदीपुरम, मेरठ
6. **श्री हर्षवर्धन** — **सदस्य**
   प्रधान जनसंपर्क अधिकारी, इफको, नई दिल्ली
7. **श्री रितु राज** — **सदस्य**
   कृषि पत्रकार
8. **सुश्री नीलम त्यागी** — **सदस्य**
   प्रगतिशील किसान
9. **सुश्री सुनीता अरोड़ा** — **सदस्य सचिव**
   प्रभारी, हिन्दी संपादकीय एकक (डीकेएमए)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रधान संपादक
डा. अनुराधा अग्रवाल

संपादक
सुनीता अरोड़ा
संपादन सहयोग
गजेन्द्र

प्रभारी (उत्पादन एकक)
पुनीत भसीन

प्रभारी (व्यवसाय एकक)
भूपेन्द्र दत्त

दूरभाष: 011-25843657
E-mail: bmicar@icar.org.in
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12

एक प्रति: रु. 30.00 वार्षिक : रु. 300.00
विशेषांक : रु. 100.00

E-mail : khetidipa@gmail.com

डिस्क्लेमर
लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुनः प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। रसायनों-कीटनाशकों की डोज संबंधित संस्तुतियों का प्रयोग विशेषज्ञों से परामर्श के बाद करें। समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

इस अंक में

विदेशक की कलम से
भारतीय कृषि के बदलते आयाम, अनुराधा अग्रवाल

4 संभावनाएं
सजावटी मछलियों का पालन
विपिन कुमार मिश्र **और** मानिक चन्द्र देबनाथ

7 मृदा स्वास्थ्य
हरी खाद से बढ़ाएं फसलोत्पादन
अनिता कुमावत, दिनेश कुमार, शाकिर अली, देवीदीन यादव **और** आई. रश्मि

10 दलहन
अरहर का पर्वतीय क्षेत्रों में सफल उत्पादन
अनुराधा भारतीय, जे.पी. आदित्य, कमल कुमार पाण्डेय, हरीश चन्द्र जोशी **और** हेमलता जोशी

13 तिलहन
सरसों का जैविक उत्पादन
भारत प्रकाश मीणा, जे के ठाकुर, बृज लाल लकारिया, दिनेश के यादव **और** एस.के. बेहेरा

16 नई पहल
गंगा नदी की कार्प मछलियों का पुनरुद्धार
दीपेन्द्र सिंह, अभिलाष ओडेयर के., बसंत कुमार दास **और** सुनीता प्रसाद

21 मात्स्यिकी
राजस्थान का मत्स्य उत्पादन विकास की ओर
एन.सी. उज्जैनियां, सी.पी. जुयाल **और** वी.के. उज्जैनियां

23 विमर्श
किसानों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का समाधान
अपूर्वा सिंह, प्रिया सिंह, बरसाती लाल, कामता प्रसाद **और** हिमांशु पाण्डेय

विषय-सूची

25 निवारण
डेरी पशुओं में ऊष्मीय तनाव
श्वेता शर्मा, अंकित शर्मा, जी.सी. गौतम, बरखा गुप्ता **और** भगत सिंह सैनी

27 रोकथाम
भण्डारित अनाज में कीटों द्वारा नुकसान का प्रबंधन
रमेश चौधरी **और** प्रदीप कुमार

30 भू-पोषण
मृदा स्वास्थ्य पर कृषि वानिकी प्रणाली का प्रभाव
प्रीति **और** श्रीभगवान गौर

34 पशु आहार
बकरियों के लिए पौष्टिक चारा है अजोला
रमेश चन्द्रा **और** मगन सिंह

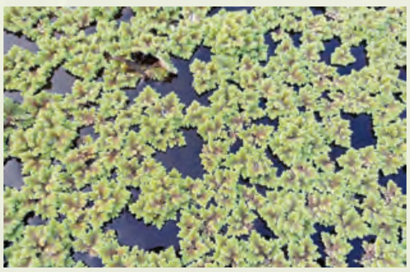

38 विकास
कृषि क्षेत्रों के लिए लाभकारी सौर ऊर्जा योजनाएं
नरेन्द्र मोहन सिंह, रंजिनी वी.आर., सूर्य प्रताप सिंह नगदली **और** अलका सिंह

41 कृषि कैलेण्डर
मई के मुख्य कृषि कार्य
राजीव कुमार सिंह, कपिला शेखावत, प्रवीण कुमार उपाध्याय, एस. एस. राठौर **और** अंजली पटेल

नई किस्में II
भाकृअनुप द्वारा वर्ष 2024-25 में जारी उच्च उपज देने वाली जलवायु अनुकूल एवं जैव संवर्धित फसल किस्में

यांत्रिकीकरण III
कृषि कार्यों के लिए आधुनिक उपकरण

निदेशक की कलम से

भारतीय कृषि के बदलते आयाम

भारतीय कृषि आधुनिक समय में तीव्र बदलाव की ओर अग्रसर है। इसमें पारंपरिक कृषि पद्धतियों को आधुनिक तकनीकों के साथ जोड़ा जा रहा है। कृषि सुधारों, फसल विविधता और जैविक खेती के बावजूद खेती के सतत विकास और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने एवं समस्त चुनौतियों का सामना करने के लिए एक समग्र दृष्टिकोण आवश्यक है।

भारतीय कृषि क्षेत्र डिजिटल क्रांति की ओर तेजी से बढ़ रहा है। इसमें सटीक खेती, कृषि उत्पादकता में बढ़ावा और टिकाऊ कृषि पद्धतियों को अपनाना शामिल है। कटिंग एज टेक्नोलॉजी जैसे आर्टिफिशियल इंटलीजेंस (एआई), इंटरनेट ऑफ थिंग्स (आईओटी) और डेटा विश्लेषण आदि से कृषि क्षेत्र में आमूल-चूल परिवर्तन हो रहा है। ये तकनीकें खेती प्रबंधन, फसल स्वास्थ्य निगरानी और निर्णय लेने की क्षमता को प्रभावित करती हैं।

इस डिजिटल क्रांति में प्रिसीजन फार्मिंग या सटीक खेती सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। सेंसर आधारित प्रौद्योगिकियों और सेटेलाइट चित्रों के प्रयोग से किसानों को मृदा की स्थिति, मौसम की सूचना और फसल विकास का विस्तृत डेटा उपलब्ध हो जाता है।

मृदा नमी, पोषण स्तर और कीट/व्याधि संक्रमण की निगरानी द्वारा उचित मात्रा में उर्वरकों और कीटनाशकों के प्रयोग से पर्यावरण की भी रक्षा होती है। स्वचालित सिंचाई पद्धतियों और ड्रोन से छिड़काव द्वारा कृषि संचालनों की दक्षता और निरंतरता में सुधार हो रहा है।

आईओटी आधारित यंत्रों और सेंसरों के प्रयोग द्वारा कृषि मूल्य शृंखला में भी सुधार लाना संभव है। कृषि फार्म, प्रसंस्करण सुविधाओं और आपूर्ति शृंखला को जोड़कर मुनाफा कमाया जा सकता है।

भारतीय कृषि क्षेत्र जैसे-जैसे डिजिटल समाधानों को अपना रहा है, इससे सटीक खेती, बढ़ती उत्पादकता और टिकाऊ कृषि प्रणालियों को अपनाने का मार्ग प्रशस्त हो रहा है। अद्यतन कृषि विधियों में सटीक खेती से लेकर वर्टिकल फार्मिंग और जलवायु अनुकूल कृषि भी भारतीय कृषि व्यापार का रूख बदलने की ओर अग्रसर है। इससे दक्षता और निरंतरता में सुधार होता है।

संसाधन दक्षता और उत्पादकता बढ़ाने के लिए आधुनिक तकनीकों का प्रयोग आवश्यक है। इसमें जीपीएस आधारित मशीनरी, ड्रोन का प्रयोग करके डेटा एकत्र करना और मृदा, जल एवं फसल स्वास्थ्य का सही समय पर आकलन शामिल है। इस दृष्टिकोण से फसल की विशिष्ट आवश्यकता के अनुसार लागत निर्धारित करने से उत्पादकता में सुधार होता है।

भारतीय कृषक अब जलवायु अनुकूल कृषि पद्धतियों को अपना रहे हैं। इसमें सूखा सहिष्णु फसल किस्में, जल दक्ष सिंचाई पद्धतियां और समेकित कृषि प्रबंधन रणनीतियां भी शामिल हैं। ये जलवायु स्मार्ट तकनीकें बदलते मौसम, जल की कमी, कीटों और रोगों की चुनौतियों के जोखिम को कम करती हैं। इससे भारतीय कृषि को जलवायु अनुकूल और टिकाऊ बनाकर उत्पादकता को बढ़ाने में मदद मिलेगी।

अनुराधा

(अनुराधा अग्रवाल)

सजावटी मछलियों का पालन

विपिन कुमार मिश्र और **मानिक चन्द्र देबनाथ**

"वैश्विक सजावटी मछली उद्योग में 2500 से अधिक मछली प्रजातियां शामिल हैं, जिनमें से 60 प्रतिशत मीठे पानी की और 40 प्रतिशत समुद्री मूल की हैं। भारत में घरेलू सजावटी मछली बाजार में उल्लेखनीय वृद्धि हो रही है, जिसकी अनुमानित वार्षिक वृद्धि दर लगभग 20 प्रतिशत है। अपनी अनूठी भौगोलिक और हाइड्रोबायोलॉजिकल परिस्थितियों और समृद्ध जैव विविधता के कारण, भारत में सजावटी मछली उत्पादन की अपार संभावनाएं हैं। भारत के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में विविध मीठे जल संसाधन मौजूद हैं, जहां कई महत्वपूर्ण सजावटी मछली प्रजातियां पाई जाती हैं। यह क्षेत्र संभावित देसी और स्थानिक मछली प्रजातियों से समृद्ध है, जो विभिन्न प्रकार की सजावटी मछलियों के लिए वरदान है। इस क्षेत्र के लगभग 80-85 प्रतिशत मछली जीवों को सजावटी श्रेणी में रखा जा सकता है। इनमें से कुछ प्रजातियां दुर्लभ हैं और केवल इसी क्षेत्र में पाई जाती हैं। स्थलाकृतिक और जलवायु विशेषताओं की विविधता के अलावा, पूर्वोत्तर भारत का यह क्षेत्र स्थानिक मछलियों से समृद्ध है। पारंपरिक मछली पालन के लिए वांछित अधिकांश छोटी खाद्य मछलियां सजावटी मछलियों के रूप में अच्छी क्षमता रखती हैं। इस प्रकार से भारत के इस पूर्वोत्तर क्षेत्र में सजावटी मछली उत्पादन की जबरदस्त संभावनाएं हैं।"

सजावटी मछली पालन जलीय कृषि में एक बढ़ता हुआ क्षेत्र है और अभी भी दुनिया में 100 मिलियन से अधिक लोगों का लोकप्रिय शौक है। विभिन्न देसी मत्स्य प्रजातियां दुनिया के विभिन्न हिस्सों से कई सजावटी मछली पालकों को आकर्षित करती हैं।

भारतीय सजावटी मछली व्यापार का अधिकांश हिस्सा प्राकृतिक पालन से आता है और इसमें यह क्षेत्र योगदान देता है। स्थलाकृतिक और जलवायु विशेषताओं की विविधता के अलावा, पूर्वोत्तर भारत का यह क्षेत्र स्थानिक मछलियों से समृद्ध है। पारंपरिक मत्स्य पालन के लिए वांछित अधिकांश छोटी खाद्य मछलियां सजावटी मछलियों के रूप में अच्छी क्षमता रखती हैं और इन्हें एक्वेरियम मछलियों के रूप में भी जाना जाता है।

देश का यह क्षेत्र बड़े पैमाने पर मछली पकड़ने के उत्पादन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, जो असंख्य नदियों, नालों और लेनटिक जल निकायों के अस्तित्व को रेखांकित करता है, जो विविध मछली जीवों की प्रचुरता को आश्रय देते हैं।

कृषि विज्ञान केंद्र, पूर्वी कमेंग (अरुणाचल प्रदेश)

सजावटी मछली पालन का महत्व

सजावटी मत्स्य पालन ने वाणिज्यिक व्यापार में मुख्य रूप से विदेशी मुद्रा अर्जित करने में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। सजावटी मछली पालन दुनिया में सबसे पसंदीदा शौक में से एक है और सजावटी मछली पालकों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। सजावटी मत्स्य पालन न केवल वैश्विक व्यापार में बल्कि विज्ञान के संचार में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

शौक के रूप में सजावटी मत्स्य पालन युवा और वृद्ध लोगों को खुशी देता है, मन

को आराम देता है, रक्तचाप को नियंत्रण में रखता है और महामारी की रोकथाम में मदद करता है। कई देशों में एक्वेरियम रखने वालों की संख्या में वृद्धि हुई है। रिपोर्ट में बताया गया कि आयु, लिंग, रोजगार की स्थिति के आधार पर इस बात की पुष्टि हुई है कि एक्वेरियम ने तनाव से राहत देने वाले लाभ उत्पन्न किए हैं। बच्चे मछली के व्यवहार, रंग और पंख के आकार को देखकर नया ज्ञान और कौशल प्राप्त कर सकते हैं। वे प्रकृति के साथ लगाव की भावना विकसित कर सकते हैं। सजावटी मछलियों को पालना अन्य पालतू पशुओं की तुलना में आसान है। वे शोर उत्पन्न नहीं करती हैं और समय-समय पर टैंक की सफाई करना ही काफी है। माना जाता है कि गोल्डफिश, एरोवाना जैसी सजावटी मछलियां सौभाग्य, धन और समृद्धि लाती हैं।

सजावटी मत्स्य पालन उद्यम को विभिन्न देशों में विशेष रूप से महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर के रूप में मान्यता दी गई है, जो महिला सशक्तिकरण में योगदान देता है। यह उद्यमिता विकास और भविष्य के लिए आजीविका सुरक्षित करने के लिए आय सृजन का एक बड़ा अवसर प्रदान करता है। इसमें अपार अवसर, कम निवेश, कम समय और कम पानी की आवश्यकता होती है। पूर्वोत्तर भारत में, सजावटी मछली उत्पादन को वित्तीय रूप से और साथ ही आर्थिक रूप से व्यवहार्य और निवेश के अनुकूल पाया गया।

प्रमुख संस्थानों के रूप में सरकार की पहल के साथ, इस क्षेत्र में सजावटी मत्स्य पालन को पर्याप्त रूप से विकसित किया जा सकता है, जो बदले में धीरे-धीरे विश्व बाजार में एक बड़ा हिस्सा हासिल कर सकता है। सजावटी मत्स्य पालन क्षेत्र को और अधिक जीवंत और आकर्षक बनाने के लिए, पूरे क्षेत्र में विभिन्न स्थानों पर सजावटी मछली उत्पादन सुविधाएं स्थापित करके सार्वजनिक-निजी भागीदारी को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

डेवेरिया एक्विपिनाटस

ग्लाइप्टोथोरैक्स कैविया

पूर्वोत्तर भारत में सजावटी मछली व्यापार का भविष्य

पूर्वोत्तर क्षेत्र में सजावटी मछली उत्पादन की जबरदस्त संभावनाएं हैं। यह क्षेत्र प्रजातियों पर पेटेंट अधिकार का दावा कर सकता है। इसके साथ ही संरक्षण के प्रयास भी कर सकता है। यह क्षेत्र पूर्वोत्तर में कुल देसी सजावटी मछलियों में से अधिकांश को अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भी पेश कर सकता है। सजावटी मछलियों ने हाल ही में वाणिज्यिक दुनिया में विशेष रूप से विदेशी मुद्रा के मामले में बड़ी भूमिका निभाई है। भारतीय घरेलू स्तर पर मांग आपूर्ति से अधिक है। सजावटी मछली उद्यम में आने वाले वर्षों में बाजार वृद्धि हासिल करने की उम्मीद है। सजावटी मछली बाजार के विस्तार का मुख्य कारण उच्च-स्तरीय जीवन शैली के लिए ग्राहक की पसंद, पैसे में वृद्धि और घरों में सजावटी मछली रखने के मनोवैज्ञानिक लाभों के बारे में बढ़ती जानकारी है। ऐसा करने से तनाव का स्तर कम हो सकता है और आराम बढ़ सकता है, जो बदले में कई लोगों को इस तरह की सजावटी मछली खरीदने के लिए प्रोत्साहित करता है। मूल रूप से आंतरिक सजावट से मेल खाने और सौंदर्य में सुधार करने के लिए, कई व्यवसाय सजावटी प्रजातियों को विभिन्न आकारों में एक्वेरियम प्रदान कर रहे हैं, जिनमें रिमलेस, आधा भूमि, आधा पानी, पेंटागन, वर्ग और षट्भुज शामिल हैं। एक्वेरियम सहायक उपकरण का लोकप्रिय होना और पैकिंग तकनीकों में विकास मौजूदा बाजार को ऊपर उठाएगा।

हारा जेरडोनी

चंदा नामा

पूर्वोत्तर भारत की रंगीन मछली प्रजातियां

पूर्वोत्तर क्षेत्र में पाई जाने वाली 422 मत्स्य प्रजातियों में से 136 जेनरा की लगभग 267 प्रजातियों में सजावटी होने की क्षमता है। इनमें से 54.32 प्रतिशत में मानव के लिए आहार, पर्यटन के लिए अनुकूलता, एक्वेरियम मछली व्यवसाय जैसे मूल्य मौजूद हैं। इस प्रकार यह अलग अर्थव्यवस्था के विकास के लिए संभावित संसाधन है। एक्वेरियम मछलियों को विभिन्न रंग स्वरूप (रंगीन), रूपात्मक रूप से अद्वितीय और व्यावहारिक रूप से करिश्माई आधार पर वर्गीकृत किया जाता है।

ट्राइकोगेस्टर लेबियोसा

पूर्वोत्तर भारत की सजावटी मछलियों में से कुछ विशेष गोल्डन बार्ब, पुंटियस, रोजी बार्ब, जाइंट डेनियो, डेनियो डांगिला, डेनियो एक्विपिनाटस, हनी गौरामी, बौना गौरामी, जेबरा डैनियो, एसोमस डैनरिकस, बादिस बादिस, बादिस असमेंसिस, बोटिया हिस्ट्रियोनिका, शैवाल भक्षक, लेपिडोसेफालस थर्मलिस, सिसोर रबडोफोरस, चन्ना बार्का, चन्ना औरेंटिमाकुलता, टायरट्रैक ईल, स्पॉटेड ईल, टोर पुतिटोरा, टोर टोर, हारा जर्दनी, सिलुरस बर्डमोरी, ओरिचथिस कोसुएटिस, पुंटियस कोंचोनियस, पुंटियस टिक्टो,डेनियो एक्विपिनाटस, डेनियो डांगिला, एसोमस डैनरिकस, लेपिडोसेफालस थर्मलिस, बगारियस बगारियस, ओलेरा लोंगिकौडाटा,

कोलिसा फासिआटा, चन्ना औरेंटिमाकुलता, ग्लाइप्टोथोरैक्स एसपी, अकीसिस एसपी, स्यूडोलागुविया शावी, ओरेइचथिस कोसुआटिस, पुंटियस कोंचोनियस इत्यादि हैं।

पूर्वोत्तर भारत की मछलियों की वर्तमान सूची में 250 संभावित सजावटी मछली प्रजातियां दिखाई गई हैं। इनमें से सबसे अधिक संख्या असोम (187) में दर्ज की गई है। इसके बाद अरुणाचल प्रदेश (165), मेघालय (159), मणिपुर (139), त्रिपुरा (103), नगालैंड (71), मिजोरम (46) और सिक्किम (29) हैं। कई स्थानिक मछली प्रजातियों का प्राकृतिक उत्पादन से व्यापार किया जा रहा है। स्थापित प्रजाति-विशिष्ट खेती एवं प्रजनन की कमी है, जिसके कारण दबाव से मछली जैव विविधता के लिए संकट उत्पन्न हो रहा है।

पूर्वोत्तर भारत की 109 मछली प्रजातियों को कम से कम उनके जीवन के प्रारंभिक चरण में या प्रजनन के मौसम के दौरान संभावित सजावटी प्रजातियों के रूप में माना जा सकता है। इनमें से 41 साइप्रिनिडे, 14 सिसोरिडे, 12 कोबिटिडे, 6-6 बालिटोरिडे और बैग्रिडे तथा 4-4 चंडीडे, चन्नीडे और मास्टेसमबेलिडे परिवार से हैं। पहले किए गए एक प्रारंभिक सर्वेक्षण से पता चलता है कि इस क्षेत्र से सजावटी मूल्य की लगभग 25 मछली प्रजातियों का निर्यात किया जा रहा है, विशेष रूप से असोम राज्य से लेकिन वर्तमान व्यापार अत्यधिक असंगठित है। इनमें से अधिकांश प्रजातियों को जंगल (प्राकृतिक संसाधनों) से पकड़ा जाता है और देश में कुछ पंजीकृत निर्यातकों के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में भेजा जाता है।

सजावटी मछलियां भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में ठंडे पानी से लेकर गर्म पानी तक विभिन्न पारिस्थितिकी तंत्रों में विभिन्न जल निकायों में रहती हैं। इस क्षेत्र में तालाब, धान के खेत, आर्द्रभूमि, नदियां देसी सजावटी मछलियों के मुख्य निवास स्थान हैं। असोम के पूर्वोत्तर कोने में अरुणाचल प्रदेश के पूर्वी हिमालय की तलहटी पर स्थित लखीमपुर जिला प्रकृति में पाई जाने वाली कई सजावटी मछलियों के लिए एक आदर्श निवास स्थान रहा है।

ब्रह्मपुत्र नदी के उत्तरी तट पर स्थित इस जिले में तीन बड़ी नदियां हैं - सुबनसिरी, रंगनदी और डिक्रोंग। इन प्रमुख नदियों की कई सहायक नदियां जिले से होकर बहती हैं। लखीमपुर जिले का 40 प्रतिशत क्षेत्र बाढ़ के मैदान के रूप में है और यह मौसमी और बारहमासी आर्द्रभूमि से ढका हुआ है।

जेनेंटोडोन कैंसिला

सारणी: सजावटी मछलियों की प्रमुख प्रजातियां

क्र.सं	प्रकार	प्रजातियां
1	बार्ब्स और मिनो	एंब्लीफैरिंजोडोन मोला। ए. जया, ए. मोरार, लौबुका लौबुका, एसोमस डेनरिका, डेवेरियो एक्विपिनाटस, डी. डांगिला, डी. डेवेरियो, रासबोरा डैनिकोनियस, आर.रासबोरा, बैरिलियस बरिला, बी.बेंडेलिसिस, बी.शाक्रा, बी.वैग्रा, बतिलियो, गर्रा बिस्पिनोसा, जी. लिसोरहिन्चस, जी. गोटीला, ओरिचथिस कोसुएटिस, पुंटियस चोल, पुंटियस टिक्टो, पेथिया कोंचोनियस, पुंटियस सोफोर, क्रॉसोचिलस बर्मेनिकस
2	कैटफिश	ऐलिया कोइला, बतासियो तांगाना, पचीप्टेरस एथेरिनोइड्स, एरेथिस्ट्स पुसिलस, हारा हारा, हारा जेरडोनी, ग्लाइप्टोथोरैक्स कैविया, जी. पेक्टिनोप्टेरस, जी. होराई, जी. कोहेनी, जी. ब्रेविपिनिस, क्रेटेउचिलोग्लानिस कामेंगेंसिस, एक्सोस्टोमा लेबियाटम, सेडेचेनिस सल्काटस, ओलेरा लोंगिकौडाटा, सिसोर रोबडोफोरस, मायटस विटैटस, एम. कैवासियस
3	बाम मछली	मैक्रोग्नैथस एक्यूलेटस (स्पाइनी ईल), मास्टेसेम्बलस आर्मेटस
4	ग्लासफिश	चंदा नामा, परम्बस्सिस लाला
5	गुरामी	ट्राइकोगैस्टर फासिआटा, टी. लेबियोसा
6	लोचेस	एबोरिच्थिस एसपीपी., नेमाचेइलस एसपीपी., एकेंथोकोबिटिस बोटिया, एम्ब्लीसेप्स एसपीपी लेपिडोसेफालस एसपीपी
7	स्वोर्डफिश	जेनेंटोडोन कैंसिला
8	बसेरा	बदीस बदीस, नंदुस नंदुस
9	स्नेकहेड फिश	चन्ना बार्का, सी. मारुलियस, सी. स्ट्रिएटस, सी. ओरिएंटलिस
10	फर मछली	लियोडोन कटकुटिया
11	नाइफफिश	नोटोप्टेरस नोटोप्टेरस

मास्टेसेम्बलस आर्मेटस

नंदुस नंदुस

हरी खाद से बढ़ाएं फसलोत्पादन

अनिता कुमावत[1], **दिनेश कुमार**[2], **शाकिर अली**[1], **देवीदीन यादव**[3] और **आई. रश्मि**[1]

"आधुनिक कृषि में रासायनिक उर्वरकों के अंधाधुंध प्रयोग से मृदा की उर्वराशक्ति, भौतिक संरचना एवं जैविक गुणवत्ता का अत्यधिक ह्रास हो रहा है। मृदा स्वास्थ्य में गिरावट के साथ-साथ फसलों की उत्पादकता में भी स्थिरता आ रही है। अतः मृदा स्वास्थ्य को बनाये रखने एवं फसल उत्पादकता एवं गुणवत्ता में वृद्धि के लिये जैविक खेती एक महत्वपूर्ण कृषि पद्धति है। जैविक खेती में अन्य कार्बनिक एवं जैविक घटकों के साथ-साथ हरी खाद का प्रयोग एक अहम भूमिका निभाता है। हरी खाद, मृदा की रासायनिक, भौतिक संरचना एवं जैविक गुणवत्ता को सुधारती है। इसके साथ ही आवश्यक पोषक तत्व भी उपलब्ध करवाती है। हरे पौधों (दलहनी तथा गैरदलहनी फसलों) को मृदा में जुताई करके मिला देना तथा हरे पदार्थ के सड़ने के पश्चात मृदा को पोषक तत्व प्रदान करने एवं जीवांश पदार्थ की मात्रा को बढ़ाने को ही 'हरी खाद' कहते हैं।"

हरी खाद वह प्रक्रिया है, जिसमें पत्तीदार दलहनी तथा गैरदलहनी हरी खाद फसलों को आवश्यक वृद्धि होने पर हरी अवस्था में या फूल आने के तुरंत बाद जुताई करके खेत की मिट्टी में दबा दिया जाता है।

हरी खाद वाली फसलों की वृद्धि शीघ्र होती है तथा अधिक मात्रा में जैव पदार्थ का उत्पादन करती हैं। ये फसलें सूक्ष्मजीवों द्वारा विच्छेदित होकर मृदा में कार्बन तथा पौधों के लिये आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि करती हैं।

[1]भाकृअनुप-भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, अनुसंधान केन्द्र, कोटा-324002 (राजस्थान); [2]भाकृअनुप-सस्य विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012; [3]भाकृअनुप-भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, देहरादून-248195 (उत्तराखंड)

खेत में हरी खाद का प्रयोग

हरी खाद को खेत में निम्न दो प्रकार से प्रयोग किया जा सकता है:

- **स्थानिक विधिः** इस विधि में हरी खाद की खड़ी फसल को उसी खेत में उगाकर एक निश्चित समय पर (सामान्यतः 45-60 दिनों बाद) कल्टीवेटर या रोटावेटर चलाकर मिट्टी में मिला देते हैं। यह विधि मुख्यतः पर्याप्त वर्षा एवं सिंचाई जल की उपलब्धता वाले क्षेत्रों में अपनायी जाती है। देश के अधिकांश क्षेत्रों में यह विधि ज्यादा प्रचलित है, मुख्यतः उत्तरी भारत। उदाहरणः ढैंचा, मूंग, उड़द, सनई, ग्वार एवं लोबिया।
- **खेत के बाहर उपलब्ध हरी पत्तियों की खादः** इस विधि में हरी खाद की फसल अन्य खेत में उगाई जाती है और उसे उचित अवस्था पर काटकर प्रयोग किये जाने वाले खेत में जुताई करके मिला दिया जाता है। इस विधि में पेड़, पौधों, झाड़ियों आदि की पत्तियों, एवं कोमल टहनियों को आसपास के स्थानों एवं जंगलों से एकत्रित करके खेत में मिलाया जाता है। यह विधि सामान्यतः कम वर्षा एवं सिंचाई जल की उपलब्धता वाले क्षेत्रों में अपनायी जाती है। दक्षिणी भारत में यह विधि अधिक प्रचलित है।

जैविक खेती में हरी खाद का प्रयोग करने से मृदा ह्रास की मात्रा में वृद्धि होती है, मृदा संरचना सुधरती है, सूक्ष्मजीवों की संख्या एवं क्रियाशीलता में बढ़ोतरी होती है। पोषक तत्वों का संतुलन बना रहता है, जिससे फसलों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

हरी खाद वाली प्रमुख फसलें

- **ढैंचा:** यह शीघ्र वृद्धि करने वाली हरी खाद की फसल है। इसे बुआई के लगभग 6-8 सप्ताह बाद मृदा में मिलाया जा सकता है। यह विभिन्न प्रकार की मृदा एवं जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल होती है। यहां तक कि इसे लवणीय मृदा, जल भराव की स्थिति तथा कम वर्षा वाली परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।
- **सनई:** तेजी से बढ़ने वाली इस हरी खाद की फसल को सामान्यत: बारिश के मौसम में उगाया जाता है। यह अधिक मात्रा में जैव पदार्थ का उत्पादन करती है एवं सूखा प्रतिरोधी होती है। अत: हरी खाद के लिये यह एक उत्तम फसल है। इसका प्रयोग उत्तरी भारत में अधिक किया जाता है।
- **मूंग, उड़द, एवं लोबिया:** ये फसलें बहुद्देशीय होती हैं। इन्हें बीज उत्पादन, पशुओं के लिये हरा चारा एवं हरी खाद की फसल के रूप में उगाया जा सकता है। इन फसलों को फलियों की तुड़ाई के तुरंत बाद हरी खाद के लिये खेत में पलट दिया जाता है। इन्हें ग्रीष्म तथा खरीफ दोनों ही ऋतुओं में उगाया जा सकता है। देश के कम वर्षा वाले उत्तरी एवं पश्चिमी क्षेत्रों में इनकी बुआई हरी खाद के साथ-साथ बीज उत्पादन के लिये की जा सकती है।
- **ग्वार:** यह फसल भी मुख्यत: देश के कम वर्षा वाले उत्तरी एवं पश्चिमी क्षेत्रों में सब्जी के लिये फली उत्पादन एवं हरी खाद के रूप में उगायी जाती है।
- **हरी पत्तियों वाली हरी खाद की फसलें:** सुबबूल, ग्लिरिसीडिया, जंगली ढैंचा, आदि की पत्तियों एवं कोमल टहनियों को आसपास के स्थानों एवं जंगलों से एकत्रित करके जुताई द्वारा मिट्टी में मिलाया जाता है। इससे मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि होती है, जिससे मृदा की संरचना में सुधार तथा फसलों के लिये आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता में बढ़ोतरी होती है।

ढैंचा को हरी खाद के लिए मिट्टी में पलटना

सारणी 1. प्रमुख हरी खाद फसलें, बुआई का अनुकूल समय, हरे पदार्थ का उत्पादन एवं उनके उपयोग से मृदा में नाइट्रोजन का संभावित योगदान

क्र. सं.	फसल	बीज दर (कि.ग्रा./हैक्टर)	बुआई का समय	जैव-भार (टन/हैक्टर)	नाइट्रोजन की मात्रा (कि.ग्रा./हैक्टर)
1.	ढैंचा	50-60	अप्रैल-जुलाई	18-25	80-120
2.	सनई	60-80	अप्रैल-जुलाई	20-30	85-125
3.	मूंग	20-25	अप्रैल-जुलाई	8-12	40-50
4.	उड़द	20-25	जून-जुलाई	10-12	40-55
5.	लोबिया	25-35	अप्रैल-जुलाई	15-18	75-90
6.	ग्वार	20-25	जून-जुलाई	20-25	65-85

हरी खाद के लाभ

- **मृदा गुणवत्ता में सुधार:** हरी खाद के प्रयोग से मृदा में जीवांश पदार्थ की मात्रा बढ़ती है। इससे मृदा की भौतिक संरचना, रासायनिक गुणों एवं जैविक गुणवत्ता में वृद्धि होती है। मृदा की जलधारण क्षमता बढ़ती है। इसके साथ ही आवश्यक मुख्य एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता में भी बढ़ोतरी होती है। लवणीय एवं क्षारीय मृदा का सुधार होता है।
- **जीवांश पदार्थ** की मात्रा बढ़ने से सूक्ष्मजीवों की संख्या एवं क्रियाशीलता में बढ़ोतरी होती है। इससे मृदा की उर्वराशक्ति एवं उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है।
- **मृदा क्षरण से सुरक्षा:** हरी खाद वाली फसलें मृदा सतह पर आवरण प्रदान करती हैं, जिससे वर्षा की बूंदों का मृदा सतह पर सीधा प्रभाव नहीं पड़ता एवं सतही जल प्रवाह की गति में भी बाधा उत्पन्न होती है और इस प्रकार मृदा क्षरण में कमी आती है एवं जल संरक्षण बढ़ता है।
- **जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण:** हरी खाद वाली फसलें जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण द्वारा मृदा में नाइट्रोजन की उपलब्धता बढ़ाती हैं, जिससे फसल की उत्पादकता बढ़ती है।
- **मृदाजनित** रोगों की रोकथाम होती है एवं खरपतवारों की वृद्धि रोकने में भी सहायक है।
- **फसलों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में वृद्धि:** हरी खाद के प्रयोग से मृदा की भौतिक दशा सुधरती है, सूक्ष्मजीवों की सक्रियता बढ़ती है। इससे फसलों के लिये आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता भी बढ़ती है। इससे फसल की वानस्पतिक वृद्धि एवं विकास अच्छा होता है। इस प्रकार फसल की उत्पादकता एवं गुणवत्ता बढ़ती है।

फसलों को खेत में मिलाने का समय

हरी खाद वाली फसलों को मृदा में उचित समय पर मिलाना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना इन्हें उगाना। अधिकांश हरी खाद वाली फसलों को मृदा में मिलाने का उचित समय बुआई के 6 से 8 सप्ताह तक होता है। जब इन फसलों की अधिकतम वानस्पतिक वृद्धि हो चुकी होती है तथा पौधों की शाखाएं, तना एवं पत्तियां मुलायम होती हैं।

विभिन्न हरी खाद वाली फसलों की बीज दर, जैव भार उत्पादन करने की क्षमता तथा मृदा में नाइट्रोजन उपलब्ध करवाने की क्षमता हरी खाद के प्रकार पर निर्भर करती है (सारणी-1)।

लाभ की तकनीकें

हरी खाद वाली फसलों से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिये इनकी बुआई तथा मृदा में मिलाने का उपयुक्त समय एवं अगली फसल की बुआई के समय का बेहतर ज्ञान होना आवश्यक है। इन फसलों को सही अवस्था पर ही मृदा में मिलाने से जीवांश पदार्थ तथा नाइट्रोजन की अधिक मात्रा प्राप्त होती है।

फसलों की प्रारंभिक अवधि, जब इनकी वानस्पतिक वृद्धि अधिकतम हो चुकी होती है तथा इनमें नाइट्रोजन एवं जल में घुलनशील घटकों की मात्रा अधिक होती है, तब खेत में पलटना चाहिये। इस अवस्था पर इनमें फूल आ जाते हैं, फसल अधिक परिपक्व नहीं होती एवं इनमें कार्बन:नाइट्रोजन अनुपात भी कम होता है। इस अवस्था पर इन फसलों को मृदा में मिलाने से इनका विघटन जल्दी पूर्ण होता है।

विघटन की प्रक्रिया को तीव्र करने के लिये मृदा में प्रर्याप्त नमी एवं वायु का उचित विनिमय होना आवश्यक है। इन फसलों को मृदा में मिलाने के लिये रोटावेटर का प्रयोग किया जा सकता है। इससे फसल को सीधे छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर मृदा में मिलाने की प्रक्रिया एक बार में ही पूरी हो जाती है। जिससे समय की बचत के साथ-साथ हरे पदार्थ का विघटन भी शीघ्र होता है। हरी खाद वाली फसलों में हरे पदार्थ की औसत उपज एवं नाइट्रोजन की प्राप्ति क्षेत्र की जलवायु एवं मृदा पर निर्भर करती है।

हरी खाद एक टिकाऊ एवं पर्यावरण अनुकूल कृषि पद्धति है, जो मृदा स्वास्थ्य को बनाये रखने एवं सुधारने में सहायक होती है। जैविक खेती में इसके सतत प्रयोग से मृदा में पोषक तत्वों का संतुलन एवं उपलब्धता लंबे समय तक बनी रहती है। यह न केवल किसानों के लिये आर्थिक दृष्टि से लाभकारी है बल्कि पर्यावरण को भी सुरक्षित रखता है। जिससे मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ती है। हरी खाद के लिये उपयुक्त फसलों का चयन एवं उपयुक्त समय पर मृदा में मिलाने से फसल उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है। ■

हरी खाद के लिए ढैंचा की फसल

हरी खाद के लिये उपयुक्त फसलों का चयन

- जैव-भार का उत्पादन अधिकतम हो, जिससे मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों का पौधों में स्थानांतरण हो सके।
- फसल की प्रारंभिक अवधि में शीघ्र वृद्धि हो, जिससे खरपतवारों का नियंत्रण हो सके एवं मृदा क्षरण भी कम हो।
- फसल गहरी जड़ वाली हो, जिससे वह मृदा में गहराई तक जाकर अधिक से अधिक पोषक तत्वों को मृदा की ऊपरी सतह पर ला सके।
- फसल के वानस्पतिक भाग जैसे शाखाएं, तना एवं पत्तियां मुलायम हों, जिससे जैविक पदार्थ का विघटन शीघ्र हो।
- फसल में कार्बन:नाइट्रोजन अनुपात भी कम होना चाहिये, जिससे आगामी फसल के लिये पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि हो।
- फसल में अधिकतम वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने की क्षमता होनी चाहिए।
- फसल संबंधित कीटों एवं रोगों के लिये अनुकूल नहीं होनी चाहिए।
- फसल की जल एवं पोषक तत्वों की मांग कम से कम हो।
- जल का कुशल उपयोग करने में सक्षम हो, जिससे मुख्य फसल के बाद मृदा में संरक्षित नमी या कम पानी के साथ उगाया जा सके।

हरी खाद एवं बीज उत्पादन के लिए ग्रीष्मकालीन मूंग की फसल

अरहर का पर्वतीय क्षेत्रों में सफल उत्पादन

अनुराधा भारतीय, जे.पी. आदित्य, कमल कुमार पाण्डेय, हरीश चन्द्र जोशी और **हेमलता जोशी**

"अरहर एक महत्वपूर्ण दलहनी फसल है, जिसे सीमित संसाधनों में आसानी से उगाया जा सकता है। वर्षाश्रित पर्वतीय क्षेत्रों में कम उपजाऊ भूमि में छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए अरहर की खेती लाभदायक साबित हो सकती है। उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में अरहर की खेती को बढ़ावा देने के लिए अतिशीघ्र परिपक्वता वाली किस्मों का विकास और उनके परीक्षण पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है, ताकि ये किस्में न केवल कम समय में तैयार हो जाएं, बल्कि जलवायु परिवर्तन जैसी चुनौतियों के बीच टिकाऊ कृषि प्रणाली को भी सशक्त बनाने में मददगार बन सकें। उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्र, भौगोलिक एवं जलवायुवीय विविधता से भरे हुए हैं। अत: इस क्षेत्र विशेष के लिए उपयुक्त किस्मों के चयन हेतु कृषकों की भागीदारी भी बहुत आवश्यक है, ताकि कृषक अपनी आवश्यकताओं एवं अनुभव के आधार पर किस्मों का चयन कर सकें। किसान सहभागिता को केंद्र में रखते हुए अरहर की शीघ्र एवं अतिशीघ्र प्रविष्टियों का मूल्यांकन किया गया। चयन प्रक्रिया में कृषकों ने उच्च उपजशीलता के साथ-साथ, अतिशीघ्र परिपक्वता/कम अवधि, नियमित बढ़वार, पौधे की कम ऊंचाई, समकालीन परिपक्वता, पूरे खेत की आसान दृश्यता आदि गुणों को प्राथमिकता दी। इस प्रकार के गुणों वाली किस्में मौजूदा फसल प्रणाली में आसानी से समायोजित हो सकती हैं। ये जंगली पशुओं से सुरक्षा की दृष्टि से भी उपयुक्त हैं। अतिशीघ्र परिपक्वता वाली अरहर का विकास पर्वतीय क्षेत्रों में टिकाऊ कृषि प्रणाली और खाद्य सुरक्षा को बढ़ावा देने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। ये प्रयास पर्वतीय कृषकों की आजीविका को सशक्त बनाने के अलावा इस क्षेत्र में अरहर की खेती को व्यावसायिक दृष्टिकोण से भी नई ऊंचाई पर ले जाने में सहायक सिद्ध होंगे।"

अरहर एक महत्वपूर्ण फसल है, जो भारत में शाकाहारी जनसंख्या हेतु प्रोटीन का एक प्रमुख स्रोत है। उत्कृष्ट पोषण, बढ़ती मांग एवं उच्च बाजार मूल्य के कारण यह भारत में प्रमुख दलहनी फसलों में से एक है तथा कृषकों के लिए व्यावसायिक स्तर पर बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह प्रोटीन, फाइबर, खनिज और कार्बोहाइड्रेट का एक समृद्ध स्रोत है। इसके साथ ही इसकी नाइट्रोजन संग्रहण क्षमता मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ाती है।

अरहर में प्रति इकाई क्षेत्रफल में 235 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता है, जिसमें से 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन आगामी फसल के लिए शेष रह जाती है। इसकी गहरी जड़ मृदा कटाव को रोकने एवं जल को सोखने में सहायक होती है।

सूखे के प्रति सहनशील होने के कारण कठिन जलवायु परिस्थितियों में भी यह अच्छी पैदावार देती है। इसके अलावा, अरहर की पत्तियां चारे के रूप में भी उपयोगी हैं। यह घरेलू ईंधन का एक महत्वपूर्ण स्रोत है साथ ही इसके तने की लकड़ी छप्पर एवं अस्थाई बाड़ बनाने के काम आती है। इसकी शाखाओं का टोकरी बनाने तथा फलों एवं सब्जियों की पैकिंग सामग्री के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

भाकृअनुप-विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा (उत्तराखंड)

अतिशीघ्र पकने वाली अरहर का विकास एवं परीक्षण

पर्वतीय क्षेत्रों में अरहर विभिन्न जलवायु एवं भौगोलिक परिस्थितियों वाले स्थानों पर उगायी जाती है। अत: इस दलहन के अधिकाधिक विस्तार हेतु उन्नत अतिशीघ्र पकने वाली प्रजातियां काफी अनुकूल हैं। इस बिन्दु को ध्यान में रखते हुए विगत कुछ वर्षों से भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्-विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा द्वारा अरहर की अतिशीघ्र पकने वाली किस्मों के विकास पर बल दिया जा रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु शीघ्र एवं अतिशीघ्र परिपक्वता वाली अरहर की प्रविष्टियां, इक्रीसेट, पटनचेरु, हैदराबाद से प्राप्त की गई थीं। इन प्रविष्टियों का परीक्षण भाकृअनुप-विवेकानंद पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, हवालबाग, अल्मोड़ा (अक्षांश 29°36' उत्तर, देशांतर 79°40' पूर्व और समुद्र तल से 1250 मीटर की ऊंचाई) में मध्यम पर्वतीय क्षेत्र में किया गया था। संस्थान में कृषक सहभागिता द्वारा अतिशीघ्र पकने वाली नियमित बढ़वार (बौनी) एवं अनियमित बढ़वार वाली किस्मों के अल्प अवधि में परिपक्वता (<120 दिनों), रोगों एवं कीटों के प्रति सहिष्णुता के आधार पर आईसीपीएल 20326, आईसीपीएल 20327, आईसीपीएल 11253, आईसीपीएल 11255 एवं आईसीपीएल 20340 प्रविष्टियों का चयन किया गया एवं उन्हें विभिन्न स्थानों के लिए परीक्षण हेतु राज्य प्रजाति परीक्षणों में नामित किया गया है, ताकि उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में विभिन्न ऊंचाई वाले क्षेत्रों हेतु अनुकूल प्रजातियों का विकास किया जा सके।

अरहर परीक्षण शीघ्र परिपक्वता-अनियमित बढ़वार

वर्तमान में यह दलहन फसल देशभर में करीब 4.7 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल में उगायी जा रही है, जिससे 4.3 मिलियन टन का उत्पादन प्राप्त होता है। देशभर में दलहन उत्पादन बढ़ाने हेतु इस दलहन के न्यूनतम समर्थन मूल्य में भी विगत वर्षों (5,050/क्विंटल रुपये वर्ष 2016-17 के दौरान) की तुलना में (7,550/क्विंटल रुपये वर्ष 2024-25 के दौरान) करीब 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अरहर का महत्वपूर्ण स्थान है। यह देश के लाखों किसानों के लिए आजीविका का स्रोत है और पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने में सहायक है। जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के बीच, अरहर टिकाऊ कृषि और पर्यावरण संरक्षण के लिए आदर्श समाधान है।

उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में अरहर उत्पादन

उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में अरहर परंपरागत रूप से उगायी जाने वाली दलहन फसलों में से एक है। इसे यहां पर 'तोर' के नाम से जाना जाता है। यहां पर पारंपरिक प्रजातियां काफी लम्बी अवधि वाली बहुवर्षीय प्रकार की हैं।

पर्वतीय क्षेत्रों में कम अवधि वाली अरहर की प्रजातियों की अनुपलब्धता के कारण पर्वतीय राज्यों में अरहर का उत्पादन काफी कम है एवं अन्य राज्यों से मंगवाकर ही इस दलहन की आपूर्ति सुनिश्चित की जाती है। उत्तराखंड में अन्य परंपरागत दलहन फसलों की अपेक्षा अरहर के अंतर्गत काफी कम क्षेत्रफल (3-4 हजार हैक्टर) है।

वर्तमान में उत्तराखंड में अरहर केवल सीमित क्षेत्रफल में ही उगायी जाती है। इसका मुख्य कारण पर्वतीय क्षेत्रों में प्रचलित फसल प्रणाली के अनुकूल किस्मों का अभाव है। अत: इसे कृषकों द्वारा प्राय: खेतों की मेड़ों पर या अन्य किसी खाली पड़ी हुई जमीन पर ही उगाया जाता है एवं इसे एकल फसल के रूप में सामान्यत: नही उगाया जाता है।

पर्वतीय राज्यों में अरहर के विस्तार एवं कृषकों के लिए लाभप्रद बनाने हेतु कम अवधि वाली प्रजातियों का कृषि प्रणाली में समावेश की अत्यधिक संभावनाएं हैं एवं पर्वतीय क्षेत्रों की वर्षाश्रित एवं जैविक कृषि हेतु भी यह काफी अनुकूल फसल है। साथ ही कम उपजाऊ, कंकरीली एवं पथरीली जमीन पर भी यह आसानी से उग सकती है। पर्वतीय राज्य उत्तराखंड में अरहर के क्षेत्रफल एवं उत्पादन बढ़ाने की दिशा में विगत वर्षो में काफी प्रयास किये गये। इसके लिए अरहर की ऐसी उन्नत प्रजातियों के विकास पर जोर दिया गया, जो उच्च उत्पादन क्षमता के साथ-साथ कम अवधि वाली हों साथ ही रोग एवं कीट रोधी भी हों।

विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा द्वारा वर्ष 2007 में अरहर की कम अवधि (130-135 दिनों) की प्रजाति वी.एल. अरहर 1 का विकास किया गया। यह अनियमित बढ़वार वाली, लम्बी (1.5-2.0 मीटर) ऊंचाई वाली प्रजाति है। इसकी उच्च उपजशीलता (18-20 क्विंटल/हैक्टर), म्लानि प्रतिरोधिता के साथ-साथ वर्षाश्रित एवं जैविक अवस्थाओं के प्रति अनुकूलता ने मध्यम ऊंचाई वाले पर्वतीय क्षेत्रों में अरहर उत्पादन को बढ़ावा दिया है।

कृषक सहभागिता द्वारा अरहर प्रजातियों का चयन

नामित प्रविष्टियों के मूल्यांकन एवं चयन हेतु उत्तराखंड के अल्मोड़ा जिले के 17 गांवों के कुल 69 अरहर उगाने वाले कृषकों (39 पुरुष और 30 महिला) को भी शामिल किया गया, ताकि पर्वतीय क्षेत्रों में अरहर की फसल के प्रति कृषकों के रुझान को समझा जा सके तथा नयी अतिशीघ्र उच्च उपजशील, नियमित बढ़वार (बौनी)

सारणी 1. पर्वतीय क्षेत्रों में उन्नत अरहर उत्पादन हेतु संस्तुत कृषि पद्धतियां

बुआई का समय	मई के अन्तिम सप्ताह से जून के प्रथम पखवाड़े तक
बीज दर	18-20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर
पौध घनत्व	100 सें.मी. x 20 सें.मी.
बीजोपचार	दाग-धब्बे रहित एवं रोग मुक्त स्वस्थ बीजों का प्रयोग करें। 5 ग्राम *ट्राइकोडर्मा विरिडी* अथवा 10 ग्राम *ट्राइकोडर्मा हार्जिनियम* द्वारा प्रति कि.ग्रा. बीज का उपचार करें अथवा 2.5 ग्राम थीरम या कार्बेण्डाजिम या दोनों के मिश्रण (1:1) से प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें।
खरपतवार प्रबंधन	पेण्डिमेथिलीन 30 ई.सी. 1 ग्राम प्रति हैक्टर की दर से खरपतवार आने से पूर्व प्रयोग करें तथा बुआई के 15-20 दिनों एवं 35-40 दिनों के बाद हाथ से निराई-गुड़ाई करें।
जल प्रबंधन	चैक बेसिन विधि द्वारा आवश्यकतानुसार सिंचाई करें तथा अधिक वर्षा होने पर उचित जल निकासी आवश्यक है।
पोषक तत्व प्रबंधन	आधारीय मात्रा के रूप में 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन + 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस + 20 कि.ग्रा. पोटाश का प्रयोग प्रति हैक्टर की दर से करें अथवा अच्छी प्रकार से सड़ी हुई गोबर की खाद 10-15 टन प्रति हैक्टर की दर से अन्तिम जुताई से पूर्व खेत में समान रूप से बिखेर कर मिला दें।

एवं अनियमित बढ़वार वाली मध्यम ऊंचाई की अरहर के प्रति कृषकों के दृष्टिकोण के विषय में जानकारी प्राप्त हो सके।

सहभागी प्रजाति चयन प्रक्रिया के माध्यम से किसानों को उनकी जरूरतों के अनुरूप फसल प्रजातियों का चयन करने में सहभागिता की, ताकि उनके द्वारा चयनित प्रजातियां, पर्वतीय क्षेत्रों की कृषि प्रणाली में समायोजित होकर सतत तथा लाभकारी कृषि प्रणाली की दिशा में एक मजबूत कदम उठाया जा सके। यह मूल्यांकन फसल की परिपक्वता अवधि के दौरान किया गया। मूल्यांकन के दौरान सभी किसानों ने अतिशीघ्र पकने एवं नियमित बढ़वार वाली अरहर की प्रजातियों को निम्न कारणों से प्राथमिकता दी:

- जल्दी पकने (110-115 दिनों) के कारण उनके क्षेत्र की मौजूदा कृषि प्रणाली में समायोजित होने के लिए उपयुक्त
- अनियमित बढ़वार वाली अरहर की तुलना में, नियमित बढ़वार वाली छोटी (1 मीटर तक) अतिशीघ्र पकने वाली अरहर में आतंरिक सस्य क्रियाओं के लिए सरलता

फसल परीक्षण कार्यक्रम

कृषक सहभागिता द्वारा अरहर की प्रविष्टियों का चयन

सारणी 2. शीघ्र परिपक्वता-अनियमित बढ़वार एवं अतिशीघ्र परिपक्वता-नियमित बढ़वार का तुलनात्मक विवरण

गुण	अतिशीघ्र परिपक्वता एवं नियमित बढ़वार	शीघ्र परिपक्वता एवं अनियमित बढ़वार
पुष्पण (दिन)	53-63	75.93
परिपक्वता (दिन)	98-113	136.141
पौधों की ऊंचाई (मीटर)	0.91-1.12	1.39.2.40
100 दानों का वजन (ग्राम)	6.33-8.58	5.68.9.61
उपज (कि.ग्रा./हैक्टर)	6231,473	444.1,211

- पूरे खेत में आसान दृश्यता के कारण जंगली पशुओं से सुरक्षा जो पर्वतीय क्षेत्रों में एक बड़ी समस्या है
- अधिक फलियों की संख्या एवं समकालिक परिपक्वता

पर्वतीय क्षेत्रों में उन्नत अरहर उत्पादन हेतु संस्तुत पद्धतियां

अतिशीघ्र अरहर का फसलोत्पादन उत्तराखंड की पर्वतीय क्षेत्रों के लिए काफी अनुकूल है एवं इसे फसल प्रणाली में आसानी से सम्मिलित किया जा सकता है।

अरहर-गेहूं, अरहर-तोरिया, अरहर-मटर एवं अरहर-मसूर पर्वतीय क्षेत्रों के लिए उपयुक्त फसल क्रम है। इसके साथ ही अरहर+सोयाबीन (2:2), अरहर+मूंगफली (1:1), अरहर+मंडुआ (1:4) उपयुक्त अंतरफसल प्रणालियां हैं। विगत वर्षों में पर्वतीय क्षेत्रों में अरहर की खेती का लाभ-लागत अनुपात भी अन्य फसलों (सिंचित धान, सिंचित गेहूं, मक्का, गहत, राजमा, मसूर एवं मटर) की अपेक्षा लाभकारी पाया गया है।

उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में अरहर की खेती के प्रति किसानों की रुचि बढ़ाने हेतु उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप प्रजातियों का विकास करना उत्पादन को बढ़ने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। किसान-सहभागी चयन प्रक्रिया में कृषकों ने उच्च उपजशीलता के साथ-साथ उन गुणों को भी प्राथमिकता दी, जिससे उनके स्थानीय समस्याओं का निदान करने में मदद मिल सके।

अत: किसान-सहभागी मूल्यांकन एवं चयन, न केवल उच्च उपज वाले विकल्प प्रदान करता है, बल्कि यह पर्वतीय क्षेत्रों में खाद्य सुरक्षा, आर्थिक लाभ, पर्यावरणीय स्थिरता को भी प्रोत्साहित करने हेतु भी महत्वपूर्ण है। उन्नत अतिशीघ्र परिपक्वता वाली अरहर पारंपरिक फसल प्रणालियों को अधिक लाभकारी बना सकती है। इन प्रयासों के माध्यम से अरहर की खेती प्रचलित कृषि पद्धतियों में मजबूती लाएगी एवं पर्वतीय कृषि अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ एवं कृषकों की आजीविका को भी सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

कृषक सहभागिता चयन प्रक्रिया के अंतर्गत वांछित लाभ

अतिशीघ्र परिपक्वता	नियमित बढ़वार एवं छोटी ऊंचाई	आसान दृश्यता	समकालिक परिपक्वता
कृषि प्रणाली में सरलतापूर्वक समायोजन फसलचक्र में सुधार जल एवं पोषक तत्वों की बचत जलवायु के लिए अनुकूलता मिश्रित खेती में उपयोगिता सूखा-सहिष्णुता आर्थिक लाभ	सहज फसल प्रबंधन पौधों का बेहतर पोषण कटाई में सुविधा जलवायु के प्रति सहनशीलता फसलचक्र में योगदान उपज की गुणवत्ता में सुधार कम स्थान में अधिक उत्पादन	जंगली पशुओं से सुरक्षा एवं समय पर पहचान फसल सुरक्षा उपायों में सुधार नुकसान को कम करना रात्रि निगरानी में सुविधा संसाधनों का कुशल उपयोग मानसिक शांति स्थायी समाधान की संभावना	कटाई में सुविधा एवं कम श्रम गुणवत्ता में सुधार कीट और रोग प्रबंधन पैदावार में वृद्धि भंडारण की सुविधा संसाधनों का कुशल उपयोग फसलचक्र में सुधार

पर्वतीय कृषकों द्वारा अरहर में चयनित वांछित गुणों के लाभ

सरसों का जैविक उत्पादन

भारत प्रकाश मीणा, जे के ठाकुर, बृज लाल लकारिया, दिनेश के यादव और **एस.के. बेहेरा**

"भारत में क्षेत्रफल तथा उत्पादन दोनों की दृष्टि से सरसों का तिलहनी फसलों में प्रमुख स्थान है। सरसों रबी की एक प्रमुख तिलहनी फसल है, जिसका भारतीय अर्थव्यवस्था में एक विशेष स्थान है। इसकी खेती मुख्य रूप से राजस्थान, उत्तर प्रदेश, हरियाणा एवं मध्य प्रदेश में की जाती है। सरसों किसानों के बीच बहुत लोकप्रिय फसल है। इससे कम सिंचाई एवं न्यूनतम लागत में दूसरी फसलों की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त हो रहा है। इसकी खेती मिश्रित रूप से एवं दो फसलीय चक्र में आसानी से की जा सकती है। सरसों की उत्पादकता 1443 कि.ग्रा./हैक्टर है। वातावरण के अनुकूल उत्पादन पद्धतियों में जैविक कृषि का एक महत्वपूर्ण स्थान है। जैविक उत्पादन पद्धति द्वारा खेती करने पर कृषि जलवायु अनुरूप एवं पर्यावरणीय स्थायित्व बना रहता है। जैविक खाद्य उत्पादों की मांग प्रतिवर्ष 20-25 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। भारत में सामान्यत: एवं प्राकृतिक रूप से ही एक बहुत बड़े भूभाग पर जैविक खेती होती है। अत: स्वाभाविक रूप से भारत, विश्व के जैविक खाद्य बाजार में एक प्रमुख आपूर्तिकर्ता की क्षमता रखता है। भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल में पिछले कुछ वर्षों से सरसों की जैविक खेती पर शोध कार्य प्रारम्भ किया गया। इस शोध कार्य में पोषण प्रबंधन, उन्नत सस्य तकनीक तथा कीटों एवं रोगों की रोकथाम का विशेष ध्यान रखा गया। इस शोध से यह स्पष्ट हो गया है कि जैविक पद्धति द्वारा सरसों उत्पादन करके भरपूर उपज प्राप्त की जा सकती है।"

सरसों आर्द्र एवं शुष्क दोनों ही प्रकार के गर्म इलाकों में भली प्रकार उगाई जा सकती है। अधिक तेल उत्पादन के लिए सरसों को ठंडा तापमान, साफ और खुला आसमान तथा पर्याप्त मृदा आर्द्रता की आवश्यकता होती है। सरसों उचित जल निकास वाली बलुई और दोमट मृदा में अच्छी उपज देती है। अत्यधिक अम्लीय एवं क्षारीय मृदा इसकी खेती हेतु उपयुक्त नहीं है। यद्यपि क्षारीय भूमि में उपयुक्त किस्म लेकर इसकी खेती की जा सकती है। जहां की भूमि क्षारीय है वहां प्रत्येक तीसरे वर्ष जिप्सम 5 टन/हैक्टर. की दर से प्रयोग करना चाहिए।

भाकृअनुप-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, नबीबाग, बैरसिया रोड, भोपाल-462038 (मध्य प्रदेश)

किस्मों का चयन

प्रमुख रूप से सरसों की निम्न किस्मों को अगेती, सामान्य समय एवं देर से बुआई वाले सिंचित, बारानी तथा लवणीय एवं क्षारीय क्षेत्रों में उपयुक्त पाया गया है:

समय पर बुआई-बरानी क्षेत्र के लिए

अरावली, आर.एच. 819, गीता, आर. बी. 50

समय पर बुआई-सिंचित क्षेत्र के लिए

पूसा-जय किसान, रोहिणी, आर.एच. 30, बसंती, पूसा बोल्ड

सारणी 1. पोषक तत्वों के आधार पर सरसों के लिए जैविक खादों की निर्धारित दर

खाद	नाइट्रोजन की मात्रा	निर्धारित दर (टन/हैक्टर)
देसी/गोबर की खाद	0.5-1.0	6.0-12.0
कुक्कुट खाद*	1.5-2.0	3.0-4.5
केंचुआ खाद	1.0-1.5	4.5-6.0

*कुक्कुट खाद का उपयोग करने से पहले 45-60 दिनों तक उसे सड़ाना चाहिए।

अगेती बुआई वाली

पूसा अग्रणी, क्रान्ति, पूसा महक, नरेन्द्र अगेती राई-4

देर से बुआई वाली

नव गोल्ड, शताब्दी, स्वर्ण जयंती

लवणीय मृदा की किस्में

सी.एस. 54, सी.एस. 52, नरेन्द्र राई-1

सस्य क्रियाएं

पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से और उसके बाद 1-2 जुताई कल्टीवेटर से करनी चाहिए। इसके बाद पाटा लगाकर खेत को भुरभुरा करना चाहिए। सरसों को बोने के लिए उपयुक्त समय सितम्बर के अंतिम सप्ताह से अक्टूबर के अंतिम सप्ताह तक है। बुआई के समय तापमान 26-30 डिग्री सेल्सियस हो, यदि अधिक हो तो बुआई में देरी कर देनी चाहिए।

सरसों (बीज 4-5 कि.ग्रा./हैक्टर) के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30-45 सें.मी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 10 सें.मी. रखी जानी चाहिए। बीज को 2-2.5 सें.मी. से अधिक गहरा नहीं बोना चाहिए। वातावरण की नाइट्रोजन के प्रभावी स्थिरीकरण के लिए सरसों के बीजों को एजोस्पाइरिस्लम तथा फॉस्फोरस विलयकारी जीवाणु कल्चर से 5-5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपयोग करना चाहिए।

फसलों को स्कलेरोशिया गलन रोग के प्रकोप से बचाने के लिये लहसुन का 2

सरसों की लहलहाती फसल

जैविक खेती के फायदे

- जैविक खेती पर्यावरण के अनुकूल है। इसके साथ ही संसाधनों का उपयोग कम करना, पुनः उपयोग और पुनरावृत्ति करने को भी बढ़ावा मिलता है।
- जैविक खादों तथा कीटों एवं रोगों की रोकथाम में काम आने वाले उत्पादों का उत्पादन किसान अपने खेत पर ही कर सकते हैं, जिससे उत्पादन लागत में कमी हो जाती है।
- जैविक कृषि में कचरे के उचित प्रबंधन द्वारा प्राकृतिक संतुलन बना रहता है।
- मृदा में कार्बनिक कार्बन एवं उर्वरता में सुधार होता है।
- सरसों की पत्तियां झड़कर खेत की मृदा में मिल जाती हैं और मृदा की उर्वराशक्ति को बढ़ा देती हैं।
- मृदा में उपस्थित विभिन्न लाभदायक जीवों की क्रियाशीलता बढ़ जाती है।
- जैविक खेती करने पर मृदा के पोषण को भी बढ़ावा मिलता है। इसके कारण मृदा के भौतिक+रासायनिक+जैविक गुणों में सुधार होता है।
- मृदा की जलधारण क्षमता बढ़ जाती है।

सारणी 2. पोषण प्रबंधन का सरसों की उपज पर वर्ष दर वर्ष प्रभाव (कि.ग्रा./हैक्टर में)

अपनाई गई विधियां	2013-14	2014-15	2015-16	2016-17	2017-18	2018-19	2019-20	2021-22	2022-23	2023-24
टी-1: 100 प्रतिशत जैविक	1003	1156	1196	1285	1654	1697	1425	1079	1550	1170
टी-2: 75 प्रतिशत जैविक + नवाचार	978	1059	1104	1178	1593	1650	1167	957	1430	1027
टी-3: 50 प्रतिशत जैविक + 50 प्रतिशत रासायनिक	907	1021	1041	1137	1520	1787	1544	1129	1587	1260
टी-4: 75 प्रतिशत जैविक + 25 प्रतिशत रासायनिक	947	1122	1115	1248	1617	1827	1087	853	1680	906
टी-5: रासायनिक	881	930	967	1093	1493	1513	1336	1011	1373	1083
टी-6: स्टेट रिकमन्डेशन	896	970	1067	1063	1463	1577	1310	1036	1377	1130

सारणी 3. सरसों के पोषण गुणवत्ता मानक

अपनाई गई विधियां	प्रोटीन (प्रतिशत)	फिनोल (प्रतिशत)	ग्लुकोसिनोलेट (प्रतिशत)
टी-1: 100 प्रतिशत जैविक	40.0	9.9	96.9
टी-2: 75 प्रतिशत जैविक + नवाचार	39.9	9.7	94.7
टी-3: 50 प्रतिशत जैविक + 50 प्रतिशत रासायनिक	39.6	9.6	92.6
टी-4: 75 प्रतिशत जैविक + 25 प्रतिशत रासायनिक	40.0	9.8	94.8
टी-5: रासायनिक	39.9	9.5	91.5
टी-6: स्टेट रिकमन्डेशन	39.6	9.4	90.4

प्रतिशत अर्क बीजोपचार के लिए उपयुक्त पाया गया है। यह फसल सूखे के प्रति सहिष्णु होती है। पहली सिंचाई खेत की नमी, फसल की किस्म और मृदा प्रकार को ध्यान में रखते हुए 30-40 दिनों के बीच फूल बनने के समय एवं दूसरी सिंचाई 60-70 दिनों के बीच फली बनने पर करनी चाहिए।

जैविक खादों की मात्रा एवं प्रबंधन

जैविक खादों को बुआई से 10-15 दिनों पूर्व ही खेत में बिखेरकर समान रूप से ऊपरी 15 सें.मी. गहराई तक अच्छी तरह से मिला देनी चाहिए। स्थानीय उपलब्धता के आधार पर उपरोक्त खादों में से कोई एक अथवा दो या तीन खादों को सम्मिलित रूप से उपयोग करें, जिससे कुल मिलाकर 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर मिले।

कीट एवं रोगों का प्रबंधन

सरसों की फसल में लगने वाले प्रमुख कीट आरा मक्खी, चितकबरा कीट, चेंपा, लीफ माइनर एवं बिहार हेयरी केटरपिलर हैं। इनसे बचाव के लिए सर्वप्रथम जिन पत्तियों पर यह प्रारम्भिक अवस्था में झुंड में दिखे उन पत्तियों को तोड़कर जला देना चाहिए। कीटों के प्राकृतिक शत्रु जैसे लेडी वर्ड बीटल (कॉक्सीनेला स्पीसीज), सिरफिड (सिरफिड स्पीसीज) माहूं आदि यदि खेत पर पर्याप्त मात्रा में हों, तो यह परजीवी स्वत: ही कीटों का नियंत्रण कर देते हैं। अन्यथा इन परजीवी कीटों के इन्सेक्ट कार्ड 3-4 कार्ड/एकड़ की दर से रखकर कीटों का नियंत्रण किया जा सकता है। इसके साथ ही नीम का तेल एजाडाइरेक्टीन 0.03 प्रतिशत का 45 एवं 60 दिनों पर छिड़काव करने पर इन कीटों का प्रकोप नहीं होता है। सरसों के प्रमुख रोगों में पर्ण चित्ती, सफेद रतुआ, आसिता तथा तना गलना है। फसल की बुआई के समय 5 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से ट्राइकोडर्मा विरिडी को जैविक खाद के साथ उपयोग करने पर गलन आदि रोग नहीं आते हैं। इसके साथ ही लहसुन का 2 प्रतिशत अर्क बीजोपचार के समय उपयोग तथा साथ ही बुआई के 50 दिनों एवं 70 दिनों बाद भी एक लीटर/हैक्टर की दर से लहसुन के 2 प्रतिशत अर्क का छिड़काव करना चाहिए। रोकथाम का सबसे अच्छा तरीका समय पर बुआई (15-25 अक्टूबर के बीच) तथा स्वस्थ, स्वच्छ एवं प्रमाणित बीजों का उपयोग करना है।

जैविक विधि से भरपूर उपज

उपज एवं गुणवत्ता पर प्रभाव

भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल में पिछले कुछ वर्षों (वर्ष 2013-2014 से लेकर 2023-2024) से सरसों की जैविक खेती पर किये गये अनुसंधान से पता लगता है कि रासायनिक खेती की तुलना में जैविक खेती के अन्तर्गत सरसों की उपज में बढ़ोतरी (सारणी-2) हुई है।

उसी प्रकार सरसों के पोषण गुणवत्ता मानकों (प्रोटीन, फिनोल, ग्लूकोसिनोलेट) में भी जैविक खेती के अन्तर्गत बढ़ोतरी हुई (सारणी-3) है। सरसों की कटाई के बाद मृदा के नमूने लिये गये जिनका विश्लेषण करने पर प्राप्त हुआ कि जैविक खाद के उपयोग से मृदा में कार्बनिक कार्बन की मात्रा के साथ-साथ उपलब्ध फॉस्फोरस एवं पोटाश की मात्रा में वृद्धि पाई गई। यदि जैविक पद्धति से सरसों की खेती की जाए, तो मृदा स्वास्थ्य के साथ-साथ उत्पादन की भी बढ़ोतरी पाई जा सकती है। यदि किसान अपने उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग करके जैविक खेती करें तो निश्चित ही किसानों को ज्यादा लाभ प्राप्त होगा।

सरसों की स्वस्थ फसल

गंगा नदी की कार्प मछलियों का पुनरुद्धार

दीपेन्द्र सिंह, अभिलाष ओडेयर के., बसंत कुमार दास और **सुनीता प्रसाद**

"गंगा नदी, अपने आध्यात्मिक और पारिस्थितिकीय महत्व के लिए अहम मानी जाती है। यह वर्तमान में अत्यधिक मछली पकड़, प्रदूषण और पर्यावरणीय समस्याओं के चलते स्वदेशी मछली प्रजातियों की कमी का सामना कर रही है। इस अध्ययन का उद्देश्य मछलियों के प्रजनन और बीज उत्पादन की नई विधियों के माध्यम से नदी की जैव विविधता को संरक्षित करना है। उन्नत प्रजनन तकनीकों और बीज उत्पादन प्रक्रियाओं को अपनाकर, गंगा नदी के मछली संसाधनों और पारिस्थितिक संतुलन को पुनर्स्थापित किया जा सकता है। विशेष तौर पर, इंडियन मेजर कार्प प्रजातियों की स्थानीय अर्थव्यवस्था और पोषण में महत्वपूर्ण भूमिका देखी गई है, इसलिए इनके संरक्षण की नितांत आवश्यकता है। प्रस्तुत लेख मछली उत्पादन में वृद्धि हेतु हार्मोन इंजेक्शन और कृत्रिम प्रजनन जैसी उन्नत प्रजनन विधियों पर केंद्रित है। इसके साथ ही, यह हैचरी और नर्सरी में पारिस्थितिकीय प्रबंधन के महत्व को भी रेखांकित करता है, जिससे उच्च अतिजीविता दर और उत्पादकता सुनिश्चित की जा सके। इन प्रयासों का लक्ष्य गंगा नदी की पारिस्थितिकी तंत्र को पुनर्जीवित करना और स्थानीय समुदायों की आजीविका को सशक्त करना है।"

गंगा नदी भारत की सबसे महत्वपूर्ण और पवित्र नदियों में से एक है। यह धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण, जैव-विविधता एवं पर्यावरणीय संतुलन के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। गंगा नदी में मछलियों की कई प्रजातियां वास करती हैं पर पिछले कुछ दशकों में गंगा नदी की मछली प्रजातियों में कमी देखी गई है। इसका मुख्य कारण अत्यधिक मछली पकड़, प्रदूषण और अन्य पर्यावरणीय समस्याएं हैं। इस संदर्भ में, गंगा नदी की स्थानीय मछलियों के प्रजनन और बीज उत्पादन के समस्त पहलुओं पर गंभीर चिंतन की आवश्यकता है।

भाकृअनुप-केंद्रीय अन्तर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता-700120

बीज उत्पादन से लेकर नदी रैंचिंग तक समस्त प्रक्रियाओं को प्रभावी ढंग से लागू कर गंगा नदी की जैवविविधता को संरक्षित और मछली संसाधनों की स्थिरता सुनिश्चित की जा सकती है। इन मछलियों के संरक्षण और संवर्धन के लिए प्रजनन और बीज उत्पादन की तकनीकों का उपयोग किया जा रहा है, जिससे नदी रैंचिंग विषयों को बढ़ावा मिल रहा है। इसके माध्यम से गंगा नदी की जैव विविधता को संरक्षित करने और पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखने का प्रयास किया जा रहा है। इसके साथ ही, यह पहल गंगा नदी के पारिस्थितिकी तंत्र को पुनर्जीवित करने और उसे प्रदूषण मुक्त बनाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

नदी रैंचिंग का मुख्य उद्देश्य गंगा नदी में मछलियों की संख्या में वृद्धि और उनकी प्रजातियों का संरक्षण करना है, जिसके तहत मछलियों के बीज का उत्पादन करके उन्हें नदी में छोड़ दिया जाता है। यह प्रक्रिया न केवल मछलियों की संख्या को बढ़ाने में सहायक है, बल्कि स्थानीय मछुआरों की आजीविका को भी सदृढ़ करती है। इनमें से इंडियन मेजर कार्प (कतला, रोहू, और मृगल) भारत के मत्स्य पालन उद्योग के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। ये प्रजातियां किसानों और मछुआरों के लिए आय का एक प्रमुख स्रोत हैं, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था मजबूत होती है।

भारत के अधिकतर जलमार्गों में ये मछलियां पाई जाती हैं, जो सामुदायिक और व्यापारिक मछली पालन के लिए सबसे अधिक उपयुक्त हैं। ये मछलियां उच्च पोषण तत्वों जैसे प्रोटीन, विटामिन और आवश्यक फैटी-एसिड का महत्वपूर्ण स्रोत हैं। ये मानव स्वास्थ्य के लिए लाभकारी और पोषणवर्धक होती हैं। इससे ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में लाखों लोगों को रोजगार मिलता है। पर्यावरणीय दृष्टिकोण से इन मछलियों का जल निकायों में पोषक तत्वों का संतुलन बनाए रखने और जल की गुणवत्ता सुधारने में महत्वपूर्ण योगदान होता है।

अधिक कुशल और सतत मत्स्य पालन के लिए अनुसंधान और विकास गतिविधियों द्वारा इंडियन मेजर कार्प के प्रजनन और उत्पादन में उन्नत तकनीकों का प्रयोग किया जा रहा है। इन मछलियों का प्रजनन और बीज उत्पादन एक वैज्ञानिक और संरचित प्रक्रिया होती है जो मछली पालन उद्योग के विकास और उन्नति में सहयोग करती है। इस लेख में इंडियन मेजर कार्प के प्रजनन और बीज उत्पादन की प्रक्रिया पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है।

इंडियन मेजर कार्प की ब्रूड मछलियों का प्रबंधन

हालांकि इंडियन मेजर कार्प आमतौर

पर 2 वर्ष में ही परिपक्व हो जाती हैं। किंतु 3 वर्ष की ब्रूड मछलियों (वजन : लगभग 3 कि.ग्रा.) को प्रजनन के लिए बेहतर माना जाता है। ब्रूडस्टॉक प्रबंधन प्रजनन काल से 3-5 महीने पहले, अर्थात जनवरी-फरवरी से शुरू होता है। इस दौरान संभावित ब्रूड मछलियों को 2000 कि.ग्रा./हैक्टर (200 कि.ग्रा./1000 वर्ग मीटर क्षेत्र) के तालाबों में स्टॉक किया जाता है। इस अवधि में सक्रिय आहार देना शुरू करते हैं, जिससे दैहिक विकास धीरे-धीरे बंद हो जाता है और जननांग का विकास शुरू हो जाता है।

मछलियों की शारीरिक वृद्धि और जननांग विकास के लिए, खली और चावल की भूसी को 1:1 के अनुपात में मिलाकर मछलियों के वजन के 1-2 प्रतिशत की दर पर पूरक आहार दिया जाता है। तालाब के जल की गहराई बनाए रखने के लिए समय-समय पर ताजा पानी भी डाला जाता है। इस प्रकार, उचित समय और उत्तम प्रबंधन के साथ, उच्च गुणवत्ता वाली ब्रूड मछलियों का उत्पादन होता है, जो प्रजनन के लिए महत्वपूर्ण होती हैं।

प्रजनन प्रक्रिया

इंडियन मेजर कार्प का प्रजनन मुख्य रूप से दक्षिण-पश्चिम मानसून (जून-अगस्त) के साथ शुरू होता है। इस समय, मछलियां प्रजनन के लिए अनुकूल जलवायु और जल प्राचलों के तालाबों में स्थानांतरित की जाती हैं। इन मछलियों का प्रजनन स्थानीय तौर पर किया जाता है, जहां नर मछलियां शुक्राणु (स्पर्म) तथा मादा मछलियां अंडे देती हैं। प्रजनन के लिए विशिष्ट तालाबों में चयनित ब्रूड मछलियों को तैयार किया जाता है और उन्हें खास देखभाल दी जाती है।

मछलियों की विभिन्न प्रजातियों का संवर्धन

तालाब प्रबंधन

इसके अंतर्गत जलीय खरपतवारों की सफाई, मृदा की गुणवत्ता में सुधार और शिकारी मछलियों पर नियंत्रण जैसे कुछ बुनियादी उपाय किए जाते हैं। तालाब में जलीय कीट पालन में चारे के लिए प्रतिस्पर्धा को छोड़कर, बीजों के लिए कोई बड़ा संकट नहीं देखा गया है। नर्सरी में एकल प्रजाति की तुलना में तालाबों में कार्प प्रजातियों का बहुपालन किया जाता है, जिसके लिए अलग-अलग प्रबंधन उपायों की आवश्यकता होती है। ऐसे पालन तालाबों में मृदा के कार्बन भार के आधार पर 5 से 10 टन/हैक्टर की दर से मवेशियों का गोबर डाला जाता है। निर्धारित मात्रा का एक-तिहाई भाग फ्राई स्टॉक करने से 8 से 10 दिन पहले डाला जाता है। शेष बीज स्टॉक करने के बाद 14 दिनों के अंतराल पर बराबर भागों में डाला जाता है। पोल्ट्री ड्रॉपिंगयुक्त खुराक में मवेशियों के गोबर की मात्रा को एक तिहाई से आधे तक कम किया जा सकता है। इसके अलावा, जैविक खाद में क्रमशः 10 और 15 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से यूरिया और सिंगल सुपर फॉस्फेट जैसे अकार्बनिक उर्वरकों का प्रयोग करने से उत्साहजनक परिणाम देखने को मिलते हैं।

इनक्यूबेशन पूल का संचालन

- अंडे इनक्यूबेशन पूल के पानी की ऊपरी सतह से प्राप्त किए जाते हैं।
- पानी के इनलेट पाइप (बत्तखनुमा) की दिशा और पानी की गति को इस तरह से बनाए रखा जाता है कि विकासशील अंडे स्क्रीन और पानी दोनों से दूर रहें और उन्हें यांत्रिक चोट से बचाया जा सके।
- पूल की पानी की गति पहले 12 घंटों के लिए 4-5 मीटर/सेकेंड, अगले 6 घंटों के लिए 1-2 मीटर/सेकेंड और बाकी ऑपरेशन के लिए 3-4 मीटर/सेकेंड पर बनाए रखी जाती है। इससे अंडों को विकसित होने से पहले नष्ट होने से बचाया जा सकता है।
- हैचिंग का समय तापमान पर निर्भर करता है, जो 16-20 घंटे तक होता है।
- अंडों को 750,000-1,000,000 अंडे प्रति घन मीटर पानी की दर से भरा जाता है।
- अंडे विभिन्न सूक्ष्म जीवों के हानिकारक प्रभावों के प्रति बेहद संवेदनशील होते हैं। आमतौर पर ऐसी स्थिति मानसून पूर्व प्रजनन के दौरान देखी जाती है। इस समस्या के नियंत्रण के लिए इनक्यूबेशन पूल में 2 घंटे के अंतराल पर $KMno_4$ घोल का छिड़काव करना बेहतर होता है।
- स्पॉन को सही तरीके से निकालने और इनकी बेहतर अतिजीविता के लिए चैम्बर को यथास्थान साफ करना आवश्यक है।

हार्मोन इंजेक्शन की मात्रा

हार्मोन इंजेक्शन की मात्रा निर्धारित करने के लिए पिट्यूटरी ग्रंथियां और सिंथेटिक हार्मोन दोनों का उपयोग स्पॉनिंग एजेंट के रूप में किया जाता है। इंजेक्शन की मात्रा मछली के शारीरिक वजन के आधार पर तय की जाती है। पिट्यूटरी ग्रंथि के लिए, मात्रा की गणना मछली के प्रति कि.ग्रा. वजन के अनुसार मि.ग्रा. में जबकि सिंथेटिक हार्मोन के लिए मात्रा मछली के प्रति कि.ग्रा. वजन के अनुसार मि.ली. में तय की जाती है। इस प्रकार, इंजेक्शन देने से पहले मछलियों का सही वजन मापना और उसके अनुसार मात्रा की सही गणना करना आवश्यक होता है ताकि प्रभावी प्रजनन सुनिश्चित किया जा सके।

पीयूष (पिट्यूटरी) ग्रंथि

स्पॉनिंग वाली मादा और नर मछलियों के वजन के आधार पर पिट्यूटरी ग्रंथि मात्रा निर्धारित की जाती है। मादा मछली को पहला इंजेक्शन 2-4 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शारीरिक वजन के आधार पर और दूसरा इंजेक्शन 4-6 घंटे के बाद 6-10 मि.ग्रा./कि.ग्रा. के आधार पर दिया जाता है। नर मछलियों को 2-3 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर के वजन पर केवल एक इंजेक्शन

तब दिया जाता है, जब मादा मछलियों को उनकी दूसरी मात्रा दी जाती है। मछली की शारीरिक स्थिति और जलवायु के अनुसार मात्रा को बढ़ाया और घटाया जा सकता है।

इको-हैचरी पूल में इनक्यूबेशन

इंडियन मेजर कार्प मछलियों के अंडों का संवर्धन एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, जो मछली पालन में उनकी उत्पादकता और अतिजीविता दर को बढ़ाने के लिए आवश्यक है। अंडों का संवर्धन आमतौर पर नियंत्रित और अनुकूल वातावरण में किया जाता है, जिससे उनकी हैचिंग दर और अतिजीविता दर की संभावना में सुधार होता है।

उपरोक्त प्रक्रिया में अंडों को विशेष इनक्यूबेशन टैंक में रखा जाता है। यह पूल या इनक्यूबेशन पूल गोलाकार होता है और सीमेंट कंक्रीट, ईंट की चिनाई या एफआरपी सामग्री से बना होता है। इसमें दो कक्ष होते हैं-आंतरिक और बाहरी। बाहरी कक्ष का व्यास 3-6 मीटर और आंतरिक कक्ष का व्यास 1.0 मीटर-1.5 मीटर का होता है। पूल की गहराई 1.0-1.5 मीटर होती है।

बाहरी और आंतरिक कक्षों को अलग करने वाली गोलाकार दीवार तार की जाली से बनी होती है। इस संरचना को नायलॉन के कपड़े (जाल का आकार 1/80 इंच) से लपेटा जाता है, जो पानी को बाहरी कक्ष से आंतरिक कक्ष में बहने में मदद करता है। अंत में, पानी हैचरी के केंद्र में रखे गए ऊर्ध्वाधर आउटलेट के माध्यम से इनक्यूबेशन पूल से बाहर आता है।

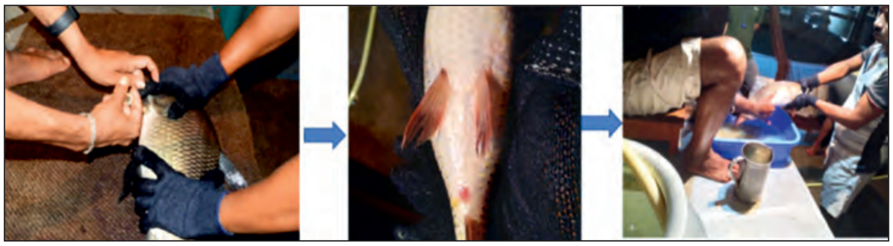

मछलियों को इंजेक्शन देना

रैंचिंग स्थलों पर मछली अंगुलिकाओं का परिवहन

मछली की अंगुलिकाओं (फिंगरलिंग) को रैंचिंग स्थलों पर सुरक्षित रूप से पहुंचाने के लिए, सबसे पहले उपयुक्त कंटेनरों का चयन करें। यात्रा से 24-48 घंटे पहले मछलियों का आहार कम कर दें। कंटेनरों में वही पानी रखें, जिसमें वे पहले से रह रही हैं, ताकि उन्हें अनुकूलन हो सके। तापमान और ऑक्सीजन का उचित स्तर सुनिश्चित करें। यात्रा का समय कम से कम रखने की कोशिश करें। रैंचिंग स्थल पर पहुंचने पर, मछलियों को धीरे-धीरे नए पानी के तापमान और परिस्थितियों के अनुसार समायोजित करें और उन्हें सावधानीपूर्वक पानी में छोड़ें। इसके बाद, मछलियों के व्यवहार और पानी की गुणवत्ता की निगरानी करें, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि वे नए वातावरण में अच्छी तरह से समायोजित हो रही हैं। परिवहन के दौरान मछली के बीज की बेहतर सुरक्षा के लिए एनेस्थेटिक्स या सिडेटिव (संवेदन शून्यता) का उपयोग भी किया जा सकता है। इसका उद्देश्य मछली के बीज की अतिजीविता अवधि को बढ़ाना और पानी में अमोनिया और कार्बन डाइऑक्साइड जैसी विषाक्त गैसों की सांद्रता को कम करना है। परिवहन के दौरान मछलियों की चयापचय (मेटाबोलिक) दर कम होने से वे लंबे समय तक जीवित रहती हैं।

सारणीः नर और मादा मछलियों की प्रमुख शारीरिक और प्रजनन संबंधित भिन्नताओं का वर्णन

लक्षण	नर	मादा
शारीरिक बनावट	अधिक पतला और सुडौल शरीर	तुलनात्मक रूप से चौड़ा और भरा हुआ शरीर, विशेष रूप से उदरीय भाग के आसपास
शल्क (स्केल), ऑपरकुलम और पेक्टोरल पंख	छूने में खुरदरा, विशेषकर पेक्टोरल फिन का पृष्ठीय सतह	पेक्टोरल पंख चिकना और फिसलन भरा होता है
उदरीय भाग	सामान्य (केवल प्रजनन अवधि में)	अधिक प्रमुख और फूला हुआ, विशेष रूप से जब अंडे लेकर चलती हो
त्वचा का रंग	विशेष रूप से प्रजनन के मौसम में चमकीला (नुप्चियल रंग)	तुलनात्मक रूप से फीका रंग
जननांग	छोटा, शंक्वाकार और नुकीला जनन पिल्ला	बड़ा, गोल और मोटा
मिल्ट और अंडे	प्रजनन के समय पेट पर हल्का दबाव डालने पर मिल्ट (शुक्राणु) निकलते हैं।	प्रजनन के समय पेट पर हल्का दबाव डालने पर अंडे निकलते हैं।
प्रजनन गांठ	पेक्टोरल फिन और सिर खुरदरा तथा स्पष्ट तौर पर पाया जाना (विशेषकर रोहू में)	अनुपस्थित या आंशिक तौर पर पाया जाना

सारणी 2. पिट्यूटरी ग्रंथि स्पॉनिंग एजेंट हार्मोन इंजेक्शन की खुराक

स्पॉनिंग एजेंट	नर	मादा	
	खुराक 1	खुराक 1	खुराक 2
पिट्यूटरी ग्रंथि हार्मोन	2-3 मि.ली. ग्राम/कि.ग्रा. शारीरिक वजन	2-4 मि.ली. ग्राम/कि.ग्रा. शारीरिक वजन	8-10 मि.ली. ग्राम/कि. ग्रा. शारीरिक वजन

पानी के इनलेट पाइप 45 डिग्री के आसपास (बत्तख के मुंह के आकार) जैसे एक गोलाकार पंक्ति में बाहरी कक्ष के फर्श पर एक-दूसरे के साथ समान दूरी पर रखे जाते हैं। कभी-कभी, अंडे देने वाले पाइप को इन्क्यूबेशन पूल से जोड़ दिया जाता है, ताकि स्पॉनिंग के तुरंत बाद अंडे को इन्क्यूबेशन के लिए पहुंचाया जा सके और अंडों का विकास सही ढंग से हो सके।

संवर्धन के दौरान अंडों की नियमित निगरानी की जाती है, ताकि संबंधित किसी समस्या को समय रहते पहचान कर उसका समाधान किया जा सके। संक्रमण और कवक रोग से बचाव के लिए संक्रमण निरोध तत्वों का भी उपयोग किया जाता है। अंडों के सही ढंग से फूटने के बाद उन्हें लार्वा टैंक में स्थानांतरित किया जाता है, जहां उनकी उचित देखभाल और पोषण की व्यवस्था की जाती है।

इनक्यूबेशन एक वैज्ञानिक और सुनियोजित प्रक्रिया है, जो मछली पालन के क्षेत्र में मछलियों की सफल हैचिंग और स्वस्थ विकास को सुनिश्चित करती है।

इनक्यूबेशन पूल की सफाई के लिए उपकरणों का उपयोग

- **सरफेस क्लीनरः** पानी की सतह पर

2 सें.मी. व्यास वाली लकड़ी या बांस की छड़ी को बाहरी कक्ष में दो दीवारों के बीच रखा जाता है। इसमें पानी के झाग, तैरते हुए मलबे और कीट जमा हो जाते हैं, जिन्हें मैन्युअल रूप से हटाया जाता है।

- **सब-सरफेस क्लीनर:** पानी की सतह पर 4-5 सें.मी. चौड़ाई का एक छिद्रित लकड़ी का तख्ता लगाया जाता है, जो आधा डूबा हुआ होता है। यह कक्ष के मध्य भाग के पानी को साफ करता है।
- **कॉलम क्लीनर:** एक छड़ी को (4-5 सें.मी. व्यास वाली) बाहरी कक्ष में दो दीवारों के बीच रखा जाता है। छड़ी पर 1.0-1.5 मीटर लंबाई के नरम ब्रिसल्स वाली नारियल की रस्सी को 10-15 सें.मी. की दूरी पर बांधा जाता है। नारियल की रस्सी के ब्रिसल्स के साथ मृत अंडे और स्पॉन चिपक जाते हैं। इन रस्सियों को इनक्यूबेशन ऑपरेशन के दौरान समय-समय पर मैन्युअल रूप से साफ किया जाता है।

स्पॉन संग्रह

तीन दिन के बाद जब अंडे फ्राई या अंगुलिका के आकार तक पहुंच जाते हैं, तो इन्हें नर्सरी तालाब में छोड़ सकते हैं या किसानों को बेच सकते हैं। स्पॉन इकट्ठा करते समय, अंडे सेने वाले हापा को हटा दिया जाता है। इसके बाद स्पॉन को हापा के एक कोने में रख दिया जाता है और फिर छोटे कंटेनर या चाय की छलनी से निकाल लिया जाता है। यह प्रक्रिया बहुत जटिल होती है, इसलिए इसे बहुत ही सावधानी से करने की आवश्यकता है।

तालाबों में बीज भंडारण

हैचरी से स्थानांतरित कार्प के स्पॉन मछलियों को नर्सरी तालाब में ही अनुकूलन के लिए छोड़ा जाता है, जब सुबह या शाम को तापमान कम होता है। अनुकूलन स्पॉन की अतिजीविता के लिए एक महत्वपूर्ण पहलू है। इससे पानी की गुणवत्ता, विशेषकर तापमान और पी-एच मान में किसी भी अचानक परिवर्तन से होने वाले गंभीर परिणामों से बचा जा सकता है। खुले कंटेनरों में स्थानांतरित स्पॉन को धीरे-धीरे तालाब के पानी में मिलाकर अनुकूलित किया जाता है। मत्स्य अंगुलिकाओं वाले ऑक्सीजन युक्त बंद पॉलीथीन बैग को कुछ मिनटों के लिए पानी की सतह पर तैरने के लिए छोड़ दिया जाता है ताकि अंदर के पानी का तापमान नर्सरी तालाब के तापमान के समान हो जाए। तेजी से अनुकूलन की सुविधा के लिए इन बैगों पर पानी का छिड़काव भी किया जा सकता है। इसके बाद धीरे-धीरे तालाब के पानी में छोड़ने के लिए पैक को खोलकर पैक के मुंह को पानी में डुबोया जाता है, ताकि स्पॉन तालाब में तैर सकें। आमतौर पर कार्प नर्सरी में स्पॉन की एकल प्रजाति का पालन किया जाता है, जबकि तालाबों की उपलब्धता के आधार पर बहु-प्रजाति पालन भी संभव है। यह भी देखा गया है कि एक से अधिक प्रजातियों को विशेष अनुपात में रखने से उसी अनुपात में फ्राई उत्पादन नहीं होता है। इससे बीज आपूर्ति के लिए वांछित प्रजातियों के अनुपात को बनाए रखना मुश्किल हो जाता है। स्पॉन का स्टॉकिंग घनत्व तालाब की उत्पादकता और प्रबंधन उपायों के आधार पर निर्धारित किया जाता है। मृदा के नर्सरी तालाबों में स्टॉकिंग घनत्व सामान्य रूप से 3-5 मिलियन/हैक्टर रखा जाता है, हालांकि, बेहतर प्रबंधन उपायों से घनत्व 10 मिलियन/हैक्टर तक बढ़ाया जा सकता है। जब कंक्रीट के टैंकों को नर्सरी के रूप में उपयोग किया जाता है, तो स्टॉकिंग घनत्व 20 मिलियन/हैक्टर तक रखा जाता है। उचित तालाब प्रबंधन उपायों के साथ, मृदा की नर्सरी में सामान्यत: 15-20 दिनों में फ्राई की अतिजीविता दर 30-40 प्रतिशत तक होती है जबकि कंक्रीट टैंक में यह 50-60 प्रतिशत तक देखी गई है।

अंडा निषेचन एवं निषेचित अण्डों का ऊष्मायन

अंडा निषेचन के लिए ड्राई स्ट्रिपिंग तकनीक का उपयोग किया जाता है। इसमें पहले परिपक्व मादा मछली से अंडा दोहन तथा तुरंत ही नर मछली से वीर्य दोहन करके उन्हें चिड़ियों के पंख की मदद से मिलाया जाता है। इसके बाद थोड़ा पानी डालकर निम्न रूप से निषेचन की प्रक्रिया की जाती है:

- चयनित प्रजनक का वजन लेना।
- प्रजनक को मुलायम और सूखे कपड़े से पोंछना।
- दाहिने हाथ के अंगूठे और तर्जनी के साथ मादा से अंडा दोहन करना।
- मादा मछली को तुरंत ऑक्सीजन युक्त पानी में छोड़ना।
- अंडजनन क्षमता की जांच करना।
- दाहिने हाथ के अंगूठे और तर्जनी के साथ नर से वीर्य का दोहन करना।
- चिड़ियों के पंख की मदद से अंडे और वीर्य को मिलाकर निषेचित करना।
- निषेचित अंडों को इन्क्यूबेशन टैंकों में स्थानांतरित करना।

निषेचित अंडों को इन्क्यूबेशन टैंकों में उचित वातन और जल गुणवत्ता के साथ रखा जाता है। यह प्रेरित प्रजनन विधि न केवल उच्च निषेचन दर और लार्वा उत्पादन सुनिश्चित करती है, बल्कि प्रजनन की अवधि को भी नियंत्रित करती है। इससे इंडियन मेजर कार्प का उत्पादन अधिक कुशल और स्थिर हो जाता है। इस प्रकार, पिट्यूटरी इंजेक्शन द्वारा प्रेरित स्पॉन्लिंग इंडियन मेजर कार्प के सफल प्रजनन और मत्स्य पालन उद्योग की स्थिरता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

फ्राई और अंगुलिका पालन

एक तालाब में फ्राई और अंगुलिकाओं का संवर्धन करना मछली पालन के शैक्षिक उद्देश्यों के लिए एक महत्वपूर्ण और अध्ययनरत प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में, स्टॉकिंग घनत्व और आहार प्रबंधन दोनों ही महत्वपूर्ण घटक हैं, जो मछलियों के सम्पूर्ण और स्वस्थ विकास के लिए महत्वपूर्ण होते हैं।

संवर्धन में उचित स्टॉकिंग घनत्व फ्राई के लिए सामान्यत: 5-10 लाख प्रति हैक्टर और अंगुलिकाओं के लिए 2-3 लाख प्रति हैक्टर रखा जाता है। इससे मछलियों को पर्याप्त जगह और पोषण प्रदान किया जा सकता है, जिससे उनका उचित विकास हो सके। आहार प्रबंधन के माध्यम से, फ्राई को प्रारंभिक चरण में प्लवक (प्लैंकटन) या आर्टिमिया नुप्लीदिया जाता है जो उन्हें आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करते हैं और उनके विकास में मदद करते हैं।

अंगुलिकाओं को विकसित होने पर उन्हें प्रोटीनयुक्त आहार जैसे केंचुए (वर्म) के टुकड़े और छोटे-छोटे कीट दिए जाते हैं। इसके अलावा, एक दिन में फ्राई को 4-5

बार और अंगुलिकाओं को 2-3 बार आहार दिया जाता है, जो उनके समग्र विकास और पोषण को सुनिश्चित करता है।

नर्सरी तालाब प्रबंधन

प्राकृतिक तौर पर कार्प के बीज बहुत नाजुक होते हैं। इनका विकास और अस्तित्व काफी हद तक उस वातावरण पर निर्भर करता है जिसमें वे रहते हैं। इन कार्प मछलियों का आहार और आहार अंतराल अवधि जैसी जैविक विशेषताएं उनके प्रारंभिक जीवनचरण के दौरान लगभग समान होती हैं, इसलिए किसी विशेष चरण में भी लगभग समान प्रबंधन की आवश्यकता होती है। विभिन्न जीवन चरणों के लिए प्रबंधन उपाय भिन्न-भिन्न होते हैं। कई शारीरिक अंग, जैसे उनके पाचन अंगों की संरचना और कार्य और आहार सेवन प्रणाली, प्रारंभिक चरणों के दौरान परिपक्व होते हैं।

पालन प्रणाली में इन बीजों की अतिजीविता और विकास काफी हद तक जलीय खरपतवारों, जलीय कीटों और शिकारी मछलियों की उपस्थिति या अनुपस्थिति, पानी और मृदा की गुणवत्ता, प्राकृतिक फीड की उपलब्धता, जनसंख्या घनत्व, पूरक फीड, पालन अवधि पर निर्भर करते हैं। अत: इन पहलुओं का उचित प्रबंधन कार्प बीज पालन की सफलता के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत माने जाते हैं। नर्सरी चरण में मेजर कार्प के 3 से 4 दिन वाले मछली बीज (5 से 6 मि.मी.) को नर्सरी तालाबों में 15 से 20 दिनों के लिए लिए रखा जाता है जब तक वे फ्राई के आकार के नहीं हो जाते। लार्वा हैचिंग की जर्दी थैली में पहले 3 दिनों के भीतर अवशोषित हो जाती है इसलिए पहले दिन से नर्सरी में आहार की आवश्यकता होती है।

संक्रमण काल में उपयुक्त प्राकृतिक फीड की उपलब्धता सबसे महत्वपूर्ण कारक है। साथ ही, हैचिंग का ऑक्सीजन और आहार के लिए जलीय कीटों, शिकारी मछलियों और खरपतवार से प्रतिस्पर्धा रहती हैं। नर्सरी में उपयुक्त पारिस्थितिक स्थिति की भी स्पॉन के अतिजीविता में एक बड़ी भूमिका है।

आमतौर पर, 1.0 से 1.5 मीटर के औसत गहरे तथा 0.02 से 0.1 हैक्टर वाले छोटे मौसमी तालाब कार्प नर्सरी के लिए उपयुक्त माने जाते हैं। इसके साथ ही, 50 से 100 वर्ग मीटर वाले कंक्रीट के टैंक, जिनमें 15 से 20 सें.मी. मृदा भरी होती है, उनमें न्यूनतम प्रबंधन उपायों के साथ मछली उत्पादन किया जा सकता है। कभी-कभी पिंजरे और पेन जैसे छोटे बाड़ों का उपयोग बड़े जल निकायों में नर्सरी तालाबों के विकल्प के रूप में भी किया जाता है।

वैज्ञानिक तकनीक द्वारा मत्स्य प्रबंधन

गर्मियों में तालाबों को सुखाने से शिकारी मछलियों और खरपतवार के उन्मूलन और जैविक खनिजीकरण में मदद मिलती है। बारहमासी जल-निकायों में अक्सर जलीय खरपतवार और शिकारी मछलियां होती हैं। इनके उन्मूलन से इन तालाबों का उपयोग नर्सरी के रूप में किया जा सकता है पर आवश्यकता है, बीज के लिए उपयुक्त वातावरण और भंडारण पूर्व प्रबंधन के उपाय। इसके लिए चूना और खाद डालने के अलावा, नियमित अंतराल पर खाद डालना, पूरक आहार देना, स्वास्थ्य की देखभाल और जल का नियमन जैसी गतिविधियां करनी पड़ती हैं।

तालाब में जल गुणवत्ता प्रबंधन में प्रजनन और अंगुलिमीन मानक

जलीय जीवन के स्वास्थ्य और विकास के लिए तालाब में जल की उच्चतम गुणवत्ता बनाए रखना महत्वपूर्ण है। इसके मुख्य मापदंडों में घुलित ऑक्सीजन (डीओ), पी-एच, तापमान, अमोनिया, नाइट्राइट और नाइट्रेट आदि आते हैं। मछलियां श्वसन के लिए घुलित ऑक्सीजन पर निर्भर रहती हैं इसलिए मछली स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने के लिए इसका स्तर 5 मि.ग्रा./लीटर से ऊपर होना चाहिए। पी-एच मान 6.5 और 9.0 के बीच रखा जाना चाहिए। पी-एच मान का अधिक स्तर मछली के लिए हानिकारक हो सकता है और उनकी चयापचय प्रक्रियाओं को प्रभावित कर सकता है।

तापमान मत्स्य पालन का एक अन्य महत्वपूर्ण कारक है। विभिन्न मछली प्रजातियों के पालन के लिए अलग-अलग तापमान सुनिश्चित किया गया है। आमतौर पर, 20 डिग्री सेल्सियस और 30 डिग्री सेल्सियस का औसत तापमान कई तालाब मछलियों के लिए उपयुक्त माना गया है। मछली के अपशिष्ट और विघटित कार्बनिक पदार्थो से उत्पन्न अमोनिया का न्यूनतम स्तर 0.05 मि.ग्रा./लीटर से कम रखा जाना चाहिए। यह मछली के लिए अत्यधिक विषैला होता है।

नाइट्राइट, जो लाभकारी बैक्टीरिया द्वारा अमोनिया से परिवर्तित होते हैं, को भी विषैला माना गया है और इनका स्तर 0.1 मि.ग्रा./लीटर से नीचे रखा जाना चाहिए। नाइट्रेट (नाइट्रोजन चक्र का अंतिम उत्पाद) जो कम हानिकारक हैं, पर मछली में तनाव और स्वास्थ्य समस्याओं को रोकने के लिए इसे 50 मि.ग्रा./लीटर से कम रखना चाहिए। नियमित निगरानी और रखरखाव जैसे आंशिक जल परिवर्तन, उचित निस्पंदन और एयरेटर का उपयोग इन मापदंडों को प्रबंधित करने में प्रभावी होता है।

आहार के अवशेष, मृत पौधों और कचरे को हटाकर तालाब के जैविक भार को नियंत्रित करने से पानी की गुणवत्ता अच्छी रहती है। लाभकारी बैक्टीरिया से हानिकारक तत्वों के अपघटन में सहायता मिलती है। जल गुणवत्ता मापदंडों का उचित प्रबंधन न केवल मछली पालन के लिए प्रभावी है बल्कि इससे एक समृद्ध जलीय पर्यावरण को भी बढ़ावा मिलता है। पानी में हानिकारक और प्रदूषित तत्वों को रोकने और एक स्थिर तथा स्वस्थ तालाब पारिस्थितिकी तंत्र को बनाए रखने के लिए नियमित परीक्षण और समायोजन की आवश्यकता है, जिससे मछलियों का स्वस्थ विकास, प्रजनन और बेहतर उत्पादकता सुनिश्चित हो सके।

राजस्थान का मत्स्य उत्पादन विकास की ओर

एन.सी. उज्जैनियां[1], **सी.पी. जुयाल**[2] और **वी.के. उज्जैनियां**[3]

राजस्थान का भौगोलिक क्षेत्रफल लगभग 3.42 लाख वर्ग कि.मी. है। यह देश का सबसे बड़ा राज्य है, जिसमें कुल 4.6 लाख हैक्टर जलक्षेत्र जलाशय, तालाब/टैंक तथा नदियों एवं नहरों के रूप में उपलब्ध है। राज्य की अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र एवं सम्बद्ध सेवाओं में मात्स्यिकी क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके फलस्वरूप राज्य के सकल राज्य घरेलू उत्पाद में मात्स्यिकी क्षेत्र की भागीदारी बढ़कर 28.70 प्रतिशत (वर्ष 2022-23) हो गयी है। राज्य में उपलब्ध जल संसाधनों में लगभग 150-160 मत्स्य प्रजातियों में मेजर कार्प, माइनर कार्प, विदेशी कार्प, कैट फिश तथा अन्य मत्स्य समूह मुख्य हैं। राज्य का मत्स्य उत्पादन 12968 मीट्रिक टन (वर्ष 1999-2000) से बढ़कर 91349.43 मीट्रिक टन (वर्ष 2023-2024) तथा राज्य का राजस्व 570.00 लाख रुपयों (वर्ष 1999-2000) से बढ़कर 7442.83 लाख रुपये (वर्ष 2023-2024) हो गया है। राज्य के जल संसाधनों की मत्स्य उत्पादन क्षमता बहुत अधिक है। यदि इनका प्रबंधन वैज्ञानिक अथवा अत्याधुनिक पद्धति से किया जाये, तो राज्य का मत्स्य उत्पादन बढ़ाया जा सकता है, जो राज्य की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने एवं युवाओं को रोजगार प्रदान करने के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।

राजस्थान की आकृति विषमकोणीय चतुर्भुज के समान है, जिसमें अरावली पर्वतमाला लम्बवत् स्थित है। इसके पश्चिमी एवं दक्षिणी ढलान से निकलने वाली नदियां अरब सागर में तथा पूर्वी ढलान से निकलने वाली नदियां बंगाल की खाड़ी में समाहित होती हैं। राज्य में अनियमित बरसात और परिवर्तनशील मौसम के कारण जलवायु में विविधता (अर्द्धशुष्क से लेकर शुष्क) पायी जाती है। यहां मानसून जून से सितम्बर तक रहता है तथा औसतन वर्षा लगभग 57 सें.मी. होती है।

राज्य के जल संसाधन

राजस्थान का जल संसाधन रासायनिक गुणों के आधार पर दो समूहों में (मीठा जल और खारा जल) विभाजित किया गया है। खारा जल मुख्यत: सतही जल के रूप में मिलता है, जो अत्यधिक सीमित मात्रा में उपलब्ध है। राज्य में कुल 33.94 बिलियन क्यूबिक मीटर सतही जल संसाधन उपलब्ध हैं, जो देश के कुल सतही जल संसाधन का 1.6 प्रतिशत है।

राजस्थान में लगभग 4.6 लाख हैक्टर अन्त:स्थलीय जलक्षेत्र है (सारणी-1) जो मछली पालन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। राज्य के अन्त:स्थलीय जल स्रोत बड़े, मध्यम एवं छोटे आकार के जलाशयों (1.76 लाख हैक्टर), तालाब एवं टैंकों (2.55 लाख हैक्टर) तथा नदियों एवं नहरों (0.30 लाख हैक्टर) के रूप में उपलब्ध है, जो देश के जल संसाधन (49 लाख हैक्टर) का लगभग 9.0 प्रतिशत है।

राज्य में प्रमुख नदी (चम्बल नदी तन्त्र, बनास नदी तन्त्र, उत्तर-पूर्वी नदी, लूनी नदी एवं पश्चिमी घाट अथवा माही नदी) विस्तृत है, जिनकी कुल लम्बाई लगभग 5000 कि.मी. हैं। इसके अतिरिक्त, पिछले कुछ वर्षों में राष्ट्रीय कृषि विकास योजना और कृषि राज्य योजना के अंतर्गत 25000 से अधिक डिग्गियों/खेत तालाबों

[1]जलीय जीव विज्ञान विभाग (वी.न.द.गु.वि.) सूरत (गुजरात); [2]मात्स्यिकी विभाग (राज. सरकार), जयपुर (राजस्थान); [3]जलकृषि विभाग (आई.सी.ए.आर-के.म.शि.सं.) मुम्बई (महाराष्ट्र)

राज्य का मत्स्य संसाधन

राजस्थान में उपलब्ध जल संसाधनों में लगभग 150-160 मत्स्य प्रजातियां व्याप्त हैं। मत्स्यपालन में आने वाली मछलियों को मत्स्य विभाग ने विभिन्न समूहों में विभाजित किया है, जिनमें मेजर कार्प (कतला: *कतला कतला, रोहू,: लेबियो रोहू, नरेन: सि. मृगला, कलौट: लेबियो काल्बासु, ममोला: लेबियो फिम्ब्रिएटस* एवं *सरसी: लेबियो गोनियस*), माइनर कार्प (बाटा: *लेबियो बाटा, मलवा: एम्लीफेरिंगोडॉन मोला, रूइया: लेबियो बोगा, दूधिया: लेबियो बोगट, गुरदी: लेबियो डेरो, खराटा: पुंटियस* प्रजातियां एवं *महासीर: टोर* प्रजातियां), विदेशी कार्पस (कॉमन कार्प: *सि. कार्पियो*, सिल्वर कार्प: (*एच. मोलिट्रिक्स* और ग्रास कार्प: *सी. इडेला*), कैट फिश (*बगेरिअस बगेरिअस, वेलेगो अट्टू* एवं *पंगेशियस* प्रजाति) तथा अन्य मछलियों में तिलापिया मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त राज्य के खारे पानी में झींगा: *लिटोपेनियस वेनामि*, मिल्क फिश (*चानोस चानोस*) और भेटकी (*लेट्स कैल्केरिफर*) इत्यादि का पालन भी किया जाता है।

जल संसाधनों का उन्नत प्रबंधन

सारणी 1. राजस्थान में उपलब्ध जल संसाधनों का विवरण

क्र.सं.	जल संसाधन का विवरण	संख्या	क्षेत्र (हैक्टर)
1.	बड़े जलाशय (5000 हैक्टर से अधिक)	13	190324
2.	मध्यम जलाशय (1000-5000 हैक्टर)	35	64151
3.	छोटे जलाशय (10-1000 हैक्टर)	2388	145823
4.	तालाब और टैंक (1-10 हैक्टर)	6207	25519
5.	तालाब और टैंक (1 हैक्टर से कम)	6913	4747
6.	नदियां और नहरें (5290 कि.मी.)	70	30000
	कुल	15626	460564

का निर्माण किया गया है, जिनका अधिकतर उपयोग खेतों में सिंचाई के लिए किया जाता है, जबकि यह सब मछली पालन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

राज्य का मत्स्य उत्पादन एवं राजस्व आय

राजस्थान में मात्स्यिकी विकास देश की द्वितीय पंचवर्षीय योजना (वर्ष 1956-57 से 1960-61) सें प्रारम्भ हुआ। इसके संरक्षण के लिए राजस्थान मात्स्यिकी अधिनियम वर्ष 1953 और राजस्थान मात्स्यिकी नियम वर्ष 1958 को लागू किया गया, जिसके बाद राज्य के सीमित जल क्षेत्र में मत्स्य पालन किया जाने लगा।

मत्स्य उत्पादन आंकड़े यह दर्शाते हैं कि इसका व्यावसायिक महत्व पिछले 3-4 दशक में अत्यधिक बढ़ा है। इसके परिणामस्वरूप राज्य में मत्स्य उत्पादन 12968 मीट्रिक टन (वर्ष 1999-2000) से बढ़कर 91349.43 मीट्रिक टन (वर्ष 2023-24) और राज्य की राजस्व आय 570.00 लाख रुपये (वर्ष 1999-2000) से बढ़कर 7442.83 लाख रुपये (वर्ष 2023-2024) हो गयी है।

जल संसाधन प्रणाली

राजस्थान की अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र एवं सम्बद्ध सेवाओं के योगदान में सतत वृद्धि हो रही है। वर्ष 2021-22 में कृषि क्षेत्र एवं सम्बद्ध उपक्षेत्र का प्रचलित मूल्यों पर सकल राज्य घरेलू उत्पाद में मूल्य 3.37 लाख करोड़ रुपये रहा। इसमें मात्स्यिकी क्षेत्र का अंशदान लगभग 0.37 प्रतिशत है, जो राजस्थान की अर्थव्यवस्था के लिये महत्वपूर्ण है।

राज्य में उपलब्ध जल संसाधनों पर हुए अध्ययन से यह सिद्ध हुआ है कि यदि इन संसाधनों का प्रबंधन वैज्ञानिक पद्धति एवं अत्याधुनिक मत्स्य उत्पादन तकनीकों का उपयोग किया जाये, तो इनमें लगभग 1.5 लाख मीट्रिक टन प्रति वर्ष मत्स्य उत्पादन किया जा सकता है और राज्य की अर्थव्यवस्था को और अधिक सुदृढ़ बनाया जा सकता है। ■

किसानों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का समाधान

अपूर्वा सिंह[1], **प्रिया सिंह**[1], **बरसाती लाल**[2], **कामता प्रसाद**[2] और **हिमांशु पाण्डेय**[2]

"जलवायु परिवर्तन आज के समय की सबसे जटिल और गंभीर चुनौतियों में से एक है। यह केवल पर्यावरणीय संकट ही नहीं है, बल्कि इसके सामाजिक और आर्थिक प्रभाव भी अत्यंत व्यापक हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण हो रहे अप्रत्याशित मौसम परिवर्तन, जैसे कि असामान्य वर्षा, सूखा, बाढ़ और तापमान में वृद्धि ने किसानों के लिए नए और गंभीर संकट उत्पन्न कर दिए हैं। किसानों के पास कृषि उत्पादन के लिए प्राचीन ज्ञान और परंपरागत तरीके होते हैं। जलवायु परिवर्तन के तीव्र और अप्रत्याशित प्रभावों ने इन तरीकों को अप्रासंगिक बना दिया है। प्राकृतिक आपदाओं से आर्थिक हानि वैश्विक रूप से बढ़ रही है और कृषि क्षेत्र इन आपदाओं के लिए अत्यधिक संवेदनशील बनता जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र आपदा जोखिम न्यूनीकरण कार्यालय (यू.एन.आई.एस.डी.आर.) रिपोर्ट (वर्ष 2018) के अनुसार, वर्ष 1998 से 2017 तक आपदा प्रभावित देशों में 2908 अरब डॉलर का आर्थिक नुकसान हुआ। कुल हानि में 77 प्रतिशत नुकसान जलवायु संबंधित आपदाओं के कारण हुआ। हाल के वर्षों में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव कृषि क्षेत्र पर अधिक प्रतिकूल हैं। भारत सरकार द्वारा वर्ष 2018 के आर्थिक सर्वेक्षण में अनुमान लगाया गया कि जलवायु परिवर्तन के प्रभाव के कारण वार्षिक हानि लगभग 9-10 अरब डॉलर थी।"

जलवायु परिवर्तन का सबसे प्रत्यक्ष और गंभीर प्रभाव फसल उत्पादन पर पड़ा है। पारंपरिक मौसम चक्रों के विपरीत, अब वर्षा और तापमान में अत्यधिक अनिश्चितता और असमानताएं देखने को मिल रही हैं।

अचानक होने वाली बेमौसम बारिश और लंबी सूखा अवधि, फसलों को अत्यधिक नुकसान पहुंचाते हैं। इससे फसल पैदावार में भारी कमी आती है। जब फसलें नष्ट होती हैं, तो किसानों के लिए लिए यह सीधा आर्थिक नुकसान होता है। ऐसे में, किसान न केवल अपने निवेश को खो देते हैं, बल्कि उनकी वार्षिक आय भी कम हो जाती है। यह वित्तीय अस्थिरता उन्हें नए ऋण लेने के लिए मजबूर करती है, जिससे उनका आर्थिक बोझ और बढ़ जाता है।

सिंचाई और संसाधनों की लागत में वृद्धि

जलवायु परिवर्तन के कारण जल संसाधनों की उपलब्धता में कमी आई है। सूखे की बढ़ती घटनाओं के कारण किसानों को अधिक संसाधनों का प्रयोग करना पड़ रहा है। इससे उन्हें अधिक वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता होती है, जो किसानों की उत्पादन लागत को बढ़ाती है। इसके लिए उन्हें भारी कर्ज लेना पड़ता है। इससे किसानों की आर्थिक स्थिति कमजोर होने के साथ-साथ कृषि लाभ में भी कमी आती है।

बढ़ता ऋण

जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न समस्याओं के कारण किसानों को अक्सर ऋण लेना पड़ता है। फसल की विफलता और बढ़ती उत्पादन लागत के कारण, किसान बैंकों और गैर-संस्थागत ऋणदाताओं से ऋण लेते हैं। जब किसान फसल से अपेक्षित आमदनी नहीं प्राप्त कर पाते, तो वे कर्ज चुकाने में असमर्थ हो जाते हैं। इससे कर्ज का बोझ बढ़ता है और कई बार यह स्थिति किसानों के लिए गंभीर कदम उठाने की ओर भी ले जाती है। यह न केवल व्यक्तिगत त्रासदी है, बल्कि समाज और अर्थव्यवस्था के लिए भी एक गंभीर समस्या है।

[1]प्रसार शिक्षा एवं संचार प्रबंधन विभाग, चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर; [2]प्रसार एवं प्रशिक्षण, (फसल उत्पादन विभाग), भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

जलवायु अनुकूल कृषि पद्धतियां

किसान जलवायु अनुकूल कृषि पद्धतियों को अपनाकर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपट सकते हैं। इसमें फसलचक्र, मिश्रित खेती और सूखा प्रतिरोधी फसलों को भी अपनाया जा सकता है। किसानों द्वारा समय-समय पर फसलचक्र अपनाने से मृदा की उर्वराशक्ति बनी रहती है और फसलों को प्रतिकूल परिस्थितियों से बचाने में मदद मिलती है। उदाहरण के लिए, दक्षिण भारत में कई किसान अब धान के साथ मछली पालन कर रहे हैं, जिससे उनकी आय में विविधता आ रही है और वित्तीय स्थिरता बढ़ रही है। सूखा प्रतिरोधी फसलें, जैसे कि बाजरा और ज्वार, की खेती भी जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने में अहम योगदान दे रही है।

पौध उत्पादन दर पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

मृदा स्वास्थ्य पर भारी दबाव

बीज और कृषि आदानों की लागत में वृद्धि

जलवायु परिवर्तन के साथ अनुकूलित बीज और उर्वरकों की मांग में वृद्धि हुई है। किसानों को ऐसी फसलों की आवश्यकता होती है जो प्रतिकूल मौसम की स्थितियों में भी जीवित रह सकें और अच्छी पैदावार दे सकें। इस प्रकार के बीज और उर्वरक महंगे होते हैं। इसके अतिरिक्त, जैविक और जैव-प्रौद्योगिकी आधारित आदानों की उच्च लागत भी किसानों की वित्तीय चुनौतियों को बढ़ाती है। छोटे और सीमांत किसान अक्सर इन महंगे आदानों को वहन करने में असमर्थ होते हैं, जिससे उनकी फसल उत्पादकता और गुणवत्ता पर असर पड़ता है। उदाहरण के लिए, पंजाब और हरियाणा के किसान, जो परंपरागत रूप से धान और गेहूं की खेती करते थे, अब महंगे संकर बीजों का उपयोग करने के लिए मजबूर हैं, जिससे उनकी उत्पादन लागत में वृद्धि हो रही है।

नीतियां

प्रभावी सिंचाई तकनीकों का प्रयोग

किसानों को सस्ती और प्रभावी सिंचाई तकनीकों का उपयोग करना चाहिए, जैसे कि ड्रिप सिंचाई और स्प्रिंक्लर प्रणाली। ये तकनीकें जलवायु अनुकूल हैं और समय की बचत करती हैं। इससे सिंचाई की लागत को कम करके किसानों की वित्तीय स्थिति में सुधार लाया जा सकता है। इसके अलावा, वर्षा जल संचयन जैसी पारंपरिक तकनीकों का पुनरुत्थान भी जल की उपलब्धता सुनिश्चित करने में मदद कर सकता है।

गुजरात और राजस्थान के कई क्षेत्रों में किसानों ने वर्षा जल संचयन के लिए तालाब और कुओं का पुनर्निर्माण किया है, जिससे उनकी सिंचाई की समस्याएं काफी हद तक हल हो गई हैं।

समुदाय आधारित संसाधन प्रबंधन

किसानों को समुदाय आधारित संसाधन प्रबंधन की पहल में शामिल होना अत्यंत आवश्यक है। यह पहल स्थानीय संसाधनों के सामूहिक उपयोग और प्रबंधन को बढ़ावा देती है, जिससे उत्पादन लागत कम होने के साथ-साथ वित्तीय लाभ भी बढ़ता है। उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र के कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों ने समूह बनाकर जल प्रबंधन और सिंचाई के संसाधनों का सामूहिक प्रबंधन शुरू किया है। इससे न केवल जल की उपलब्धता बढ़ी है, बल्कि उत्पादन लागत भी कम हुई है, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है।

फसलों के उत्पादन हेतु अपनाएं जलवायु अनुकूल कृषि

सरकारी योजनाएं

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना किसानों को फसल नुकसान के मामले में वित्तीय सुरक्षा प्रदान करती है। इस योजना के तहत, किसानों को नाममात्र के प्रीमियम पर व्यापक बीमा कवरेज मिलता है, जो उन्हें प्राकृतिक आपदाओं के कारण होने वाले वित्तीय नुकसान से बचाता है। यह योजना विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसानों के लिए बनाई गई है, जिनकी आर्थिक स्थिति किसी भी तरह के फसल नुकसान को सहन करने की अनुमति नहीं देती।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना का उद्देश्य सिंचाई सुविधाओं का विस्तार करना और जल संसाधनों का कुशल प्रबंधन करना है। इस योजना के तहत, किसानों को सस्ती और प्रभावी सिंचाई तकनीकों के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। इससे उनकी उत्पादन लागत में कमी आती है। इसके अलावा, इस योजना के तहत, जल संचयन और संरक्षण के प्रयासों को भी प्रोत्साहन मिलता है, जिससे जल की उपलब्धता सुनिश्चित होती है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना

इस योजना का उद्देश्य किसानों को उनकी मृदा के स्वास्थ्य के बारे में जानकारी प्रदान करना है। मृदा स्वास्थ्य कार्ड के माध्यम से, किसानों को यह जानकारी मिलती है कि उनकी मृदा के लिए कौन से उर्वरक और फसलें सबसे उपयुक्त हैं। इससे किसानों की उर्वरक लागत कम होती है और फसलों की पैदावार बढ़ती है, जिससे उनकी आय में सुधार होता है। यह योजना विशेष रूप से उन क्षेत्रों में महत्वपूर्ण है जहां मृदा की उर्वराशक्ति कम हो रही है।

राष्ट्रीय कृषि बाजार ई-नाम

ई-नाम का उद्देश्य किसानों को एक ऑनलाइन प्लेटफॉर्म प्रदान करना है, जहां वे अपनी फसलें सीधे खरीददारों को बेच सकते हैं। इससे बिचौलियों की भूमिका कम होती है और किसानों को उनकी उपज का सही मूल्य मिलता है, जिससे वित्तीय स्थिति में सुधार होता है। यह योजना विशेष रूप से छोटे किसानों के लिए लाभदायक है, जो पारंपरिक बाजारों में अपनी उपज बेचने में कठिनाई का सामना करते हैं। ■

डेरी पशुओं में ऊष्मीय तनाव

श्वेता शर्मा, अंकित शर्मा, जी.सी. गौतम, बरखा गुप्ता और **भगत सिंह सैनी**

" वर्तमान में जलवायु परिवर्तन दुनियाभर में चर्चा का एक अत्यंत संवेदनशील विषय है। इंटर गवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज के अनुसार, पृथ्वी का तापमान प्रत्येक दस वर्ष में 0.2 डिग्री सेल्सियस बढ़ रहा है। यह भी अनुमान लगाया गया था कि वर्ष 2100 तक, औसत वैश्विक सतह का तापमान 1.4-5.8 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाएगा। गर्मियों में तापमान के कारण पशुओं के शरीर में होने वाले बदलावों को 'हीट स्ट्रैस' या ऊष्मीय तनाव कहा जाता है। ऊष्मीय तनाव एक जटिल घटना है, जो कई पशु प्रतिक्रिया तंत्रों का कारण बनती है, जिनका मवेशियों के कल्याण और उत्पादकता पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। अगर तापमान विदेशी और संकर नस्ल के लिए 24-26 डिग्री सेल्सियस, देसी गायों के लिए 33 डिग्री सेल्सियस, भैंसों के लिए 36 डिग्री सेल्सियस से अधिक हो, तो उनके शरीर में पसीने और हांफने द्वारा गर्मी कम करने की क्षमता अत्यधिक कम हो जाती है, जिसके कारण शरीर का तापमान अत्यधिक बढ़ जाता है। परिवेश के तापमान में वृद्धि पशु के विकास, दूध और गर्भधारण, प्रजनन प्रदर्शन, शारीरिक एवं प्रतिरक्षात्मक प्रतिक्रिया पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। "

डेरी पशुओं के व्यवहार पर ऊष्मीय तनाव गहरा असर डालता है। उच्च ताप भार के संपर्क में आने वाले पशु अपनी गतिविधि में परिवर्तन, लेटने की आवृत्ति, आराम करने और खड़े होने में लगने वाले समय, प्रजनन, आहार क्षमता, पानी का सेवन, आक्रमकता, भय और मुखरता का प्रदर्शन कर सकते हैं।

चारे और पानी के उपयोग पर प्रभाव

यह देखा गया है कि 25-26 डिग्री सेल्सियस के परिवेश के तापमान पर स्तनपान करवाने वाली गायों में आहार दर कम होना शुरू हो जाती है और 30 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापमान पर यह दर तेजी से कम हो जाती है। वहीं 40 डिग्री सेल्सियस पर, आहार का सेवन 40 प्रतिशत तक कम हो सकता है।

हीट स्ट्रेस हाइपोथैलेमस के रोस्ट्रल कूलिंग सेंटर की ओर जाता है। यह मध्य तृप्ति केंद्र को उत्तेजित करता है। पशुओं में भूख न लगने की समस्या उत्पन्न होती है। इस प्रकार पशु आहार का सेवन कम करता है और इसके परिणामस्वरूप दूध का उत्पादन कम होता है।

ऊष्मीय तनाव के अंतर्गत शरीर की सतह के वाष्पीकरण में 32.2 डिग्री सेल्सियस पर स्पष्ट रूप से वृद्धि होती है, जिसमें पानी की खपत में 28 प्रतिशत की वृद्धि और मल के पानी में 33 प्रतिशत की कमी होती है।

डेरी पशुओं के प्रजनन पर प्रभाव

ऊष्मीय तनाव प्रारंभिक भ्रूण के विकास, भ्रूण के विकास, ल्यूटोलिटिक तंत्र, कूपिक वृद्धि और विकास, कोलोस्ट्रम गुणवत्ता, गर्भाधान दर, गर्भाशय के कार्य और अंत:स्रावी अवस्था को प्रभावित करता है। हालांकि मौसम में बदलाव नर पशुओं की प्रजनन और एंडोक्राइन प्रोफाइल को प्रभावित करता है।

पोस्ट-ग्रेजुएट इंस्टीट्यूट ऑफ वेटेरिनरी एजुकेशन एंड रिसर्च, जयपुर (राजुवास)

रूमिनेशन और रूमेन की गतिशीलता पर प्रभाव

पर्यावरण के तापमान में वृद्धि से हाइपोथैलेमस के भूख केंद्र पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इससे रूमिनेशन का समय कम हो जाता है और भूख कम हो जाती है। गर्मी के तनाव और रेटिकुलर गतिशीलता के दौरान रूमेन उपकला में रक्त का प्रवाह कम हो जाता है और रूमिनेशन कम हो जाता है। गर्मी से तनावग्रस्त बछड़ों में, उच्च लैक्टिक एसिड सांद्रता और निचले रुमिनल पी–एच स्तर पाए गए। यह संकेत देता है कि उच्च लैक्टिक एसिड सांद्रता और निम्न रूमेन पी–एच स्तर रूमेन गतिशीलता को कम करती है।

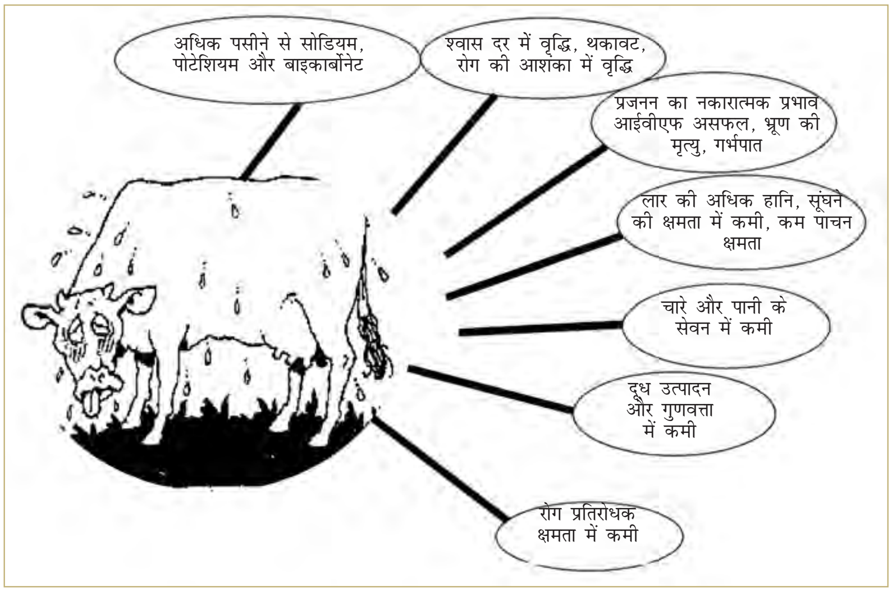

ऊष्मीय तनाव में पशु उत्पादकता पर गहरा प्रभाव

नीतियां

प्रजनन प्रबंधन

- गर्मी सहिष्णु पशुओं का आनुवंशिक चयन।
- शेड में शीतलन प्रणाली की व्यवस्था जरूरी।
- शेड में पानी के छिड़काव की सुविधा अहम।
- पंखों की व्यवस्था होनी चाहिये।
- हवादार शेड होना चाहिए।
- प्राकृतिक या कृत्रिम छाया क्षेत्र प्रदान करना।

आहार प्रबंधन

- पशुओं को दिन के ठंडे समय में एवं शाम के समय में आहार खिलाना चाहिये।
- उच्च गुणवत्ता वाला चारा उपलब्ध करवाएं।
- जितना हो सके ताजा आहार देना चाहिये।
- आहार दर की आवृत्ति बढ़ाएं।
- भूसे की मात्रा कम कर दें एवं पशु को हरा चारा देना चाहिये।

अन्य

- पशुओं को ज्यादा देर तक धूप में न रखें।
- पशुओं को भरपूर मात्रा में साफ और शीतल जल पिलाएं।
- पशुओं को इलेक्ट्रोलाईट्स दें जिससे इलेक्ट्रोलाईट्स संतुलन बना रहे।
- अगर कोई पशु ऊष्मीय तनाव से ग्रसित दिखे तो तुरंत चिकित्सीय सहायता लें।

रूमिनल किण्वन के मुख्य उपोत्पादों में से मीथेन उत्सर्जन गर्मी के तनाव से प्रभावित हो सकता है। जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में पशुधन से मीथेन उत्सर्जन महत्वपूर्ण है। नतीजतन, गर्मी का तनाव माइक्रोबियल संख्या को प्रभावित करता है, विशेष रूप से मीथेन का उत्पादन करने वाले बैक्टीरिया को प्रभावित करता है।

प्रतिरक्षा प्रणाली पर प्रभाव

यह देखा गया है कि गर्मी के तनाव का प्रतिरक्षा प्रणाली पर कोशिका मध्यस्थता और तरल प्रतिरक्षा प्रतिक्रियाओं के माध्यम से नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। गर्मी के तनाव की अवधि के दौरान हाइपोथैलेमिक–पिट्यूटरी–अधिवृक्क (एचपीए) और अनुकंपी–अधिवृक्क–मेडुलरी (एसएएम) अक्ष तनावपूर्ण उत्तेजनाओं के जवाब में समस्थिति को बनाए रखने के लिए सक्रिय होते हैं। तीव्र तनाव की अवधि के दौरान कोर्टिसोल का उत्पादन प्रतिरक्षा प्रणाली के लिए एक उत्तेजना के रूप में कार्य करता है, हालांकि चिरकालिक तनाव के दौरान कोर्टिसोल स्राव प्रतिरक्षा दमन से जुड़ा हुआ है। नतीजतन, प्रतिरक्षा प्रणाली के दमन के परिणामस्वरूप पशु रोग और प्रतिरक्षा चुनौतियों के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाता है।

दुग्ध उत्पादन पर प्रभाव

दुग्ध उत्पादन में चयापचय में वृद्धि के कारण, स्तनपान करवाने वाली डेरी गायों में गैर-स्तनपान करवाने वाली (सूखी) गायों की तुलना में गर्मी के तनाव के प्रति संवेदनशीलता बढ़ जाती है। गर्मी के मौसम में गायों को थनैला रोग होने की आशंका अधिक होती है।

शुष्क अवधि के दौरान गर्मी का तनाव कोशिकाओं की मृत्यु और स्वत: भक्षण के साथ स्तन ग्रंथि में जटिलता को प्रेरित कर सकता है। स्तन उपकला कोशिकाओं की मात्रा कम हो सकती है, जो दूध उत्पादन में कमी का कारण बन सकती है।

ऊष्मीय तनाव ऑक्सीकृत ग्लूकोज चयापचय में उतार–चढ़ाव को प्रभावित करता है और ग्लूकोज के प्रवाह को स्तन ग्रंथियों में रोक सकता है। ऊष्मीय तनाव से दूध की पैदावार में भारी कमी हो सकती है।

पोषक तत्वों के अवशोषण में कमी और हार्मोनल असंतुलन अन्य कारक हैं, जो गर्मी के तनाव के दौरान दूध उत्पादन को कम करते हैं। ऊष्मीय तनाव प्रोलैक्टिन, थायराइड हार्मोन, ग्लूकोकार्टिकोइड, ग्रोथ हार्मोन, एड्रेनोकोर्टिकोट्रोपिक हार्मोन (एसीटीएच), ऑक्सीटोसिन, एस्ट्रोजन और प्रोजेस्टेरोन जैसे हार्मोन प्रोफाइल में बदलाव का कारण बन सकता है। लंबे समय तक गर्मी का तनाव शारीरिक वृद्धि करने वाले हार्मोन के परिसंचारी स्तर को कम कर सकता है, जिससे नकारात्मक ऊर्जा संतुलन होता है एवं दूध उत्पादन कम हो सकता है।

जब तापमान ऊष्मीय तटस्थता के क्षेत्र से ऊपर उठता है तो दूध की संरचना बदल जाती है। इसके अलावा, प्रोटीन अंशों के विश्लेषण में कैसिइन, लैक्टाल्बुमिन, इम्युनोग्लोबुलिन जी (आईजीजी) और आईजीए के प्रतिशत में भी कमी देखी गई।

भण्डारित अनाज में कीटों द्वारा नुकसान का प्रबंधन

रमेश चौधरी और **प्रदीप कुमार**

" जिस समय ताजा अनाज उपलब्ध नहीं होता है, तब संग्रहित अनाज का उपयोग किया जाता है। उचित प्रबंधन के अलावा संग्रहित अनाज विभिन्न कीटों से संक्रमित हो जाता है। संग्रहित अनाज को कीटों द्वारा भारी नुकसान पहुंचाया जाता है। परिणामस्वरूप गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों तरह के नुकसान होते हैं। संग्रहित अनाज कीटों के प्रकोप के पीछे मुख्य कारण उनके विकास और अस्तित्व के लिए अनुकूल जलवायु की उपस्थिति है। इस प्रकार इन कीटों से बचाव के लिए संग्रहित अनाज सफल प्रबंधन आवश्यक हो जाता है। भंडारित अनाज के कीट आमतौर पर अनाज खाते हैं, दाने में छेद करते हैं और फिर संग्रहित भाग में लगे रोगाणु दाने को नष्ट कर देते हैं। ये भंडारित अनाज उत्पादों में कमी का कारण बनते हैं। इसके परिणामस्वरूप मुख्य रूप से बाजार मूल्य में कमी आती है और पोषण संबंधी कमी के कारण भारी नुकसान होता है। भंडारित अनाज में गुणात्मक नुकसान प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, अमीनो अम्ल में रासायनिक परिवर्तनों के कारण होता है। इसके अलावा उनके उत्सर्जक उत्पादों द्वारा संदूषण होता है, जो मानव स्वास्थ्य के लिए बेहद हानिकारक हो सकता है, जो अनाज को संसाधित करते हैं। कीटों से होने वाला नुकसान मात्रा के मामले में नहीं बल्कि ज्यादातर गुणवत्ता के मामले में होता है। इसका उचित एवं स्थाई प्रबंधन आवश्यक है। "

संग्रहित अनाज में कीटों के फैलाव की समस्या विश्वभर में है। विभिन्न संग्रहित खाद्य उत्पादों को नुकसान पहुंचाने वाली लगभग एक हजार कीट प्रजातियां मौजूद हैं। इनमें घुन, बोरर, पतंगे, आटे के पतंगे, मीलवर्म, बुकलाइस, माइट्स आदि संग्रहित बीजों को क्षति पहुंचाने वाले प्रमुख कीट हैं।

कीट विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी (उत्तर प्रदेश)

भण्डारित अनाज में लगने वाले प्रमुख कीट

चावल घुन *(सिटोफिलस ओरिजा)*

इस कीट की प्रमुख दो प्रजातियां दुनिया के गर्म भागों में मौजूद हैं।

क्षतिः चावल (मुख्य), मक्का और अन्य अनाज भंडारण (वैकल्पिक) में विकसित हो रहा लार्वा अनाज के अंदर रहता है और उसे खोखला कर देता है। चावल के दानों में वयस्क के निकलने तक पूरा अनाज आमतौर पर नष्ट हो जाता है।

जीवनचक्रः जीवनकाल 30 डिग्री सेल्सियस तापमान और 70 प्रतिशत आर्द्रता पर लगभग पांच सप्ताह का होता है और विकास के लिए इष्टतम परिस्थितियां 27-31 डिग्री सेल्सियस तापमान और 60 प्रतिशत आर्द्रता से अधिक पर होती हैं लेकिन 17 डिग्री सेल्सियस तापमान से नीचे विकास रुक जाता है।

दाल भृंग *(कैलोसोब्रुचस चिनेंसिस)*

ये अफ्रीका और एशिया में दलहनी फसलों के हानिकारक कीट हैं, जो खेतों में उगने वाली फसलों और भण्डारों में देखने को मिलते हैं। ये कीट अधिकांश उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में सर्वव्यापी मौजूद हैं। कैलोसोब्रुचस की कई अन्य प्रजातियां उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में दलहनी फसलों पर अधिक प्रकोप करती हैं।

क्षतिः लोबिया (मुख्य), सोयाबीन तथा अन्य दालों (विकल्प) में कीट के लार्वा दानों में छेद कर देते हैं। संक्रमण आमतौर पर फार्म स्टोर से शुरू होता है। इसके वयस्क भृंग लगभग आधे मील तक उड़ सकते हैं।

दाल को क्षति पहुंचाते भृंग

चावल में लगने वाले घुन

जीवनचक्रः संपूर्ण जीवनचक्र में लगभग 4-5 सप्ताह लगते हैं, तथा सामान्यतः इनकी एक वर्ष में 6 या 7 पीढ़ियां होती हैं।

खपरा बीटल *(ट्रोगोडर्मा ग्रेनारियम)*

यह कीट काफी हद तक बहुभक्षी है और भण्डारित अनाज में एक वर्ष या उससे अधिक समय तक नुकसान पहुंचा सकता है। यह कीट लगभग विश्वव्यापी है, लेकिन पूर्वी अफ्रीका और दक्षिण अफ्रीका में अनुपस्थित है। यह दुनिया के अधिकांश गर्म भागों में संग्रहित अनाज और दालों का एक बहुत ही गंभीर कीट है। गर्म आर्द्र उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में इसका विकास तेजी से होता है।

क्षतिः ये कीट मूंगफली (मुख्य), दालें, मसाले और विभिन्न अनाजों को नुकसान पहुंचाते हैं। इसके लार्वा भंडारित अनाज में छेद कर देते हैं।

जीवनचक्रः इष्टतम परिस्थितियों में जीवनचक्र लगभग तीन सप्ताह (37 डिग्री सेल्सियस तापमान और 25 प्रतिशत आर्द्रता) में पूरा हो सकता है। यह एक ऐसा कीट है, जिसे नियंत्रित करना मुश्किल है।

चावल का मोथ कीट

यह कीट चावल, ज्वार, बाजरा, साबुत अनाज, दलहन, तिलहन, मेवे, सूखे मेवे और

कीटग्रस्त अन्न

उपाय

- अनाज भंडारण से पहले भंडारगृह को साफ करें।
- गोदाम की दीवारों और फर्श पर पाई जाने वाली दरारों और छिद्रों को सीमेंट से प्लास्टर करें।
- खलिहान को कीट संक्रमण से मुक्त रखें।
- उपयोग से पहले थ्रेसर, हार्वेस्टर और अन्य सभी मशीनों को अच्छी तरह से साफ करें।
- दरवाजे की 25 सें.मी. ऊंचाई तक धातु की शीट उपलब्ध करवाएं।
- गोदाम से गंदगी, कचरा और मकड़ी के जाले हटा दें और नष्ट कर दें।
- अनाज को नमीरोधी भंडारण संरचनाओं में रखें।
- चूहों, गिलहरियों और पक्षियों को भंडारण में प्रवेश करने से रोकें।
- नई कटी हुई फसल को भंडारण करने से पहले गोदामों/भंडारण शीटों को साफ करें।
- कीटों के जैविक छिपने के स्थानों को नष्ट करें।

पिसे हुए मसालों के प्रसंस्करित उत्पादों पर आक्रमण करता है। जिन भण्डार गृहों में अंधेरा रहता है वहां यह कीट अधिक आम है। केवल लार्वा नुकसान के लिए जिम्मेदार है। यह खाद्यान्न को मल, मोल्ट और घने जाल से प्रदूषित करता है। साबुत अनाज के मामले में, दाने बंधे होते हैं। वयस्कों के पंख बिना धब्बे वाले समान रूप से हल्के पीले भूरे रंग के होते हैं। संक्रमण आमतौर पर केवल भण्डारित अनाज में ऊपरी 45 सें.मी. तक सीमित होता है।

भण्डारित अनाज में कीटों का प्रबंधन

कुछ कीट पकने के चरण में बीजों को नुकसान पहुंचाना शुरू करते हैं और भंडारण के दौरान भी जारी रखते हैं। उपचारात्मक कारवाई करने से पहले यह निर्धारित करना महत्वपूर्ण है कि कीट की कौन सी प्रजातियां मौजूद हैं। प्रबंधन के लिए निवारक अभ्यास, निगरानी, स्वच्छता और मुख्य रोगजनकों की पहचान आवश्यक है।

भंडारण संरचनाएं, पुराने बैग और पुराने कंटेनर संक्रमण का प्रमुख स्रोत हैं। अनाज के विभिन्न प्रसंस्करण चरणों में, यानी बीजों के विकास और परिपक्वता की प्रक्रिया के दौरान, थ्रेसिंग यार्ड में प्रसंस्करण, बीजों के संचरण के दौरान, या भंडारण के दौरान बड़ी संख्या में कीट संग्रहित अनाज तक पहुंच जाते हैं।

लाल आटा बीटल
(ट्रिबोलियम कैस्टेनम)

यह कीट गर्म देशों में सर्वव्यापी है। यह विश्व के गर्म भागों में खाद्य भंडारों में पाया जाने वाला एक गंभीर द्वितीयक कीट है।

क्षति: ये मक्का, गेहूं और अन्य भंडारित अनाजों को नुकसान पहुंचाते हैं। इस कीट के संक्रमण से भण्डारित अनाज के दानों में छेद, टूटे हुए दाने एवं इनका क्षतिग्रस्त होना स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। नुकसान लार्वा और वयस्कों दोनों द्वारा किया जाता है।

जीवनचक्र: अंडे से वयस्क तक का जीवन काल 30 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 35 दिनों का होता है। वयस्क दोपहर के समय के बाद बड़ी संख्या में उड़ते हैं। लार्वा और वयस्क आटा, पशु चारा और अन्य जमीनी सामग्री खाते हैं।

चावल पर आक्रमण करते मोथ कीट

उपाय

- खाली गोदाम स्थान में एल्युमिनियम फॉस्फाइड गोलियों का उपयोग करें।
- पुराने बोरों को 0.0125 प्रतिशत साइपरेंथ्रिन 25 ई.सी. या फेनवेलरेट 20 ई.सी. से कीटाणुरहित करें।
- खाली गोदामों को 0.05 प्रतिशत मैलाथियान का छिड़काव करके कीटाणुरहित करें।

उपचारात्मक उपाय

परंपरागत विधियां

- दालों को तोड़कर भण्डारित कर लें, ताकि दालों को भृंग के प्रकोप से बचाया जा सके। ये कीट दालों पर आक्रमण करना पसंद करते हैं, न कि विभाजित दालों पर।

कीटों से बचाव के लिए खाद्यान्नों को वायुरोधी सीलबंद ढांचे में भंडारित करें।

यांत्रिक विधियां

- अनाज भरने से पहले सभी फटे हुए थैलों को सिल दें।
- कीटों के लिए अनुकूल परिस्थिति को समाप्त करने के लिए सभी टूटे हुए अनाज दानों को हटा दें।

भौतिक विधियां

कीटों पर प्रभावी नियंत्रण प्राप्त करने के लिए फर्श पर मिलों में इंफ्रारेड हीटर द्वारा सुपर हीटिंग प्रणाली प्रदान करें।

- भंडारण वातावरण को संशोधित करके कम ऑक्सीजन उत्पन्न करें तथा नियंत्रित करने के लिए उच्च कार्बन डाइऑक्साइड विकसित करें।

रासायनिक विधि

बैगों पर मैलाथियान 50 ईसी 10 मि.ली./लीटर को 3 लीटर स्प्रे द्रव/100 वर्ग मीटर की दर से छिड़कें।

- कीटनाशकों का सीधे खाद्यान्नों पर छिड़काव न करें।

बीज के लिए प्रयुक्त अनाज को मैलाथियान दवा की 5 प्रतिशत मात्रा को 250 ग्राम प्रति क्विंटल बीज की दर से मिलाकर सुरक्षित करें।

निवेदन

लेखक बंधु *खेती* पत्रिका के लिए अपने लेख और संबंधित फोटो, कवरिंग लैटर के साथ सिर्फ निम्न पोर्टल पर ही अपने मोबाइल नम्बर के साथ भेजें। ध्यान रखें कि फोटो जेपीजे फॉर्मेट में और उच्च रेज्योल्यूशन की हों। लेख में अधिकतम 1200 शब्दों की संख्या रखने का प्रयास करें। इसके अतिरिक्त सुझाव और प्रतिक्रियाएं भी भेज सकते हैं। लेख भेजने के लिए कृपया कृतिदेव 010 टाइप फेस का प्रयोग करें।

हमारा पोर्टल है :
epatrika.icar.org.in

—संपादक

मृदा स्वास्थ्य पर कृषि वानिकी प्रणाली का प्रभाव

प्रीति[1] और **श्रीभगवान गौर**[2]

"कृषि वानिकी प्रणाली में एक ही भूमि क्षेत्र के भीतर फसलों, पशुधन या चारे के साथ बारहमासी पौधों का एकीकरण शामिल है, जो मोनोकल्चर खेती की तुलना में संसाधनों के उपयोग की दक्षता को बढ़ाता है। यह प्रणाली संरचनात्मक और कार्यात्मक विविधीकरण को भी बढ़ावा देती है। हालांकि, बढ़ती मानव एवं पशुधन आबादी के कारण और प्राकृतिक संसाधनों के निरंतर क्षरण के साथ, मृदा के स्वास्थ्य और पोषण की स्थिति में लगातार कमी आ रही है। कई अध्ययनों ने अनियोजित कृषि प्रथाओं, वनों की कटाई, अत्यधिक चराई, भवन निर्माण और सड़क निर्माण को मृदा के क्षरण में प्रमुख कारकों के रूप में पहचाना है। इन कारकों के अलावा, जलवायु परिवर्तन भी मृदा की गुणवत्ता में कमी को तेज करता है। मृदा की इस स्थिति ने शोधकर्ताओं को समाधान तलाशने के लिए प्रेरित किया है। बारहमासी पौधे-आधारित प्रणाली विभिन्न प्रक्रियाओं के माध्यम से मृदा के स्वास्थ्य को बढ़ाने का एक संभावित साधन प्रदान करती हैं। वृक्ष की प्रजातियां-पत्तियों, जड़ों, टहनियों, फूलों और फलों सहित कार्बनिक पदार्थों की महत्वपूर्ण मात्रा में योगदान करके मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में सुधार कर सकती हैं। यह सुधार कार्बनिक पदार्थ अपघटन से गुजरता है, जो पोषक तत्वों के चक्रण, जैविक नाइट्रोजन निर्धारण, पोषक तत्व पंपिंग और मृदा के कटाव में कमी जैसे लाभ प्रदान करता है, जो सभी कृषि वानिकी प्रणाली में मृदा की गुणवत्ता के सुधार में योगदान करते हैं।"

कृषि वानिकी एक भूमि-उपयोग प्रणालियों और प्रौद्योगिकियों के लिए सामूहिक नाम है जहां बारहमासी वनस्पति पेड़, झाड़ियां, बांस आदि का फसलों के उत्पादन हेतु उपयोग किया जाता है। भारत पांचवीं सबसे बड़ी वैश्विक अर्थव्यवस्था है जो समृद्ध प्राकृतिक संसाधनों से प्रदत्त है और वन क्षेत्र में 10 वें (80.9 मिलियन हैक्टर) स्थान पर है।

[1]भाकृअनुप-केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल; [2]राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, जींद-126102

भारत वर्ष 2014 में राष्ट्रीय कृषि वानिकी नीति बनाने और घोषित करने वाला दुनिया का पहला देश है, जो उत्पादकता, लाभप्रदता, विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र स्थिरता बढ़ाने पर केंद्रित है। देश में हाल ही में 28.49 मिलियन हैक्टर कृषि वानिकी क्षेत्र है जो कुल भौगोलिक क्षेत्र का 8.65 प्रतिशत है।

कृषि वानिकी प्रणालियों में विभिन्न घटकों के बीच पारिस्थितिक और आर्थिक दोनों तरह का समन्वय होता है। आजकल, गहन कृषि प्रथाओं, वनों की कटाई और जलवायु परिवर्तन के कारण शुष्क भूमि में लगभग 73 प्रतिशत रेंजलैंड्स, सीमांत वर्षा आधारित कृषि योग्य भूमि का 47 प्रतिशत और सिंचित कृषि योग्य भूमि के बड़े भाग अनुर्वर हो रहे हैं। इस कारण कृषि वानिकी जैसी प्रथाएं मृदा के स्वास्थ्य को संरक्षित करने में मदद करती हैं और क्रमशः 18 प्रतिशत (8-61 प्रतिशत), 41 प्रतिशत (28-76 प्रतिशत), और 51 प्रतिशत (39-68 प्रतिशत) मृदा की कार्बन, नाइट्रोजन और फॉस्फोरस सामग्री में सुधार करती हैं।

भारत में प्रमुख कृषि वानिकी प्रणाली

भारत में प्रमुख कृषि वानिकी प्रणालियां

विभिन्न जलवायु, भूगोल और सांस्कृतिक विविधताओं के आधार पर विकसित की गई हैं। ये प्रणालियां भूमि, जल और जैव विविधता के संरक्षण के साथ-साथ आर्थिक लाभ प्रदान करती हैं। देश में प्रमुख कृषि वानिकी प्रणालियां निम्न हैं:

उद्यानिकी कृषि वानिकी प्रणाली

- **वृक्ष प्रजातियां:** आम, अमरूद, नारियल, पपीता और अनार।
- **फसलें:** यह प्रणाली आमतौर पर फलदार वृक्षों के साथ सब्जियां, अनाज और दालें उगाने में प्रयोग होती है।
- **उदाहरण:** आम के वृक्षों के साथ मूंगफली, सब्जियां या दलहनी फसलें उगाई जाती हैं।
- **लाभ:** विविध उत्पादों की प्राप्ति, मृदा की उर्वरता में सुधार और स्थिर आय।

दलहनी फसलों के साथ कृषि वानिकी

- **वृक्ष प्रजातियां:** आकासिया, अल्बिजिया, लेयूकेना, ग्लिरिसिडिया।
- **फसलें:** मूंग, चना, और मूंगफली जैसी दलहनी फसलें।
- **लाभ:** दलहनी वृक्षों द्वारा नाइट्रोजन का संचय, मृदा की उर्वरता में सुधार, और अधिक उत्पादकता।

सिल्वी-पाश्चर प्रणाली

- **वृक्ष प्रजातियां:** यूकेलिप्टस, कसुअरीना, लेयूकेना।
- **पशु:** गाय, बकरी, भेड़, मुर्गी आदि।
- **लाभ:** पशु चराई के साथ-साथ वृक्षों से लकड़ी, चारा और छांव मिलती है। यह प्रणाली मृदा अपरदन को रोकने और जैव विविधता को बढ़ाने में मदद करती है।

शुष्क भूमि क्षेत्र में कृषि वानिकी

- **वृक्ष प्रजातियां:** आकासिया, प्रोसोपिस, इमली।
- **फसलें:** बाजरा, मक्का, मूंगफली, और चना।
- **लाभ:** यह प्रणाली सूखा सहनशील वृक्षों और फसलों को एक साथ उगाने में सहायक होती है, जो पानी का सदुपयोग करती है और मृदा नमी को बनाए रखती है।

कृषि वानिकी से बढ़ाएं उत्पादन

मृदा उर्वरता में सुधार

कृषि वानिकी निम्न तरीकों से मृदा की उर्वरता में सुधार कर सकती है:

- **पोषक चक्र:** कृषि वानिकी प्रणाली वृक्ष द्वारा मृदा में पोषक चक्रण में योगदान करती है। वृक्ष गहरी मृदा की परतों से पोषक तत्वों को अवशोषित करते हैं और उन्हें पत्ती के अवशेष और जड़ के निकास के माध्यम से सतह पर लाते हैं। जब ये पत्तियां विघटित हो जाती हैं, तो वे पोषक तत्वों को वापस मृदा में छोड़ देती हैं, जिससे पोषक तत्व समृद्ध हो जाते हैं।
- **नाइट्रोजन स्थिरीकरण:** विभिन्न कृषि वानिकी प्रणालियों में नाइट्रोजन-स्थिरीकरण करने वाले वृक्ष शामिल हैं, जैसे कि फलियां, जो वायुमंडलीय नाइट्रोजन को पौधों द्वारा उपयोग करने योग्य रूप में परिवर्तित करके मृदा की उर्वराशक्ति को बढ़ा सकती हैं। यह रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता को कम करती है, जिससे पर्यावरण और किसान दोनों को लाभ होता है।
- **कार्बनिक पदार्थ:** वृक्षों की उपस्थिति से मृदा में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ जाती है। वृक्ष अपशिष्ट (पत्तियों, छाल और शाखाओं) का अपघटन मृदा में कार्बन को जोड़ता है। इसकी जैविक सामग्री में सुधार करता है। यह कार्बनिक पदार्थ पोषक तत्वों की उपलब्धता, जल प्रतिधारण क्षमता और मृदा की माइक्रोबियल गतिविधि को बढ़ाता है।

स्वस्थ मृदा जीवन का आधार

बांस और अन्य गैर-लकड़ी वन उत्पादों के साथ कृषि वानिकी

- **वृक्ष प्रजातियां:** बांस, महोगनी, नीम।
- **फसलें:** सब्जियां, औषधीय पौधे।
- **लाभ:** बांस से निर्माण सामग्री, हस्तशिल्प और खाद्य (बांस के शूट्स) प्राप्त होते हैं। गैर-लकड़ी वन उत्पादों के साथ कृषि वानिकी ग्रामीण आजीविका को स्थिरता प्रदान करती है।

बहुस्तरीय कृषि वानिकी प्रणाली

- **वृक्ष प्रजातियां:** नारियल, केला, पपीता, लौंग।
- **फसलें:** अदरक, हल्दी, काली मिर्च जैसे मसाले और सब्जियां।
- **लाभ:** यह प्रणाली छोटे खेतों में उत्पादकता

को बढ़ाती है, जहां विभिन्न प्रकार के फल, सब्जियां, मसाले और लकड़ी एक ही स्थान पर प्राप्त होते हैं।

जलग्रहण क्षेत्रों में कृषि वानिकी

- **वृक्ष प्रजातियां:** कसुअरीना, आकासिया, यूकेलिप्टस।
- **फसलें:** मक्का, गेहूं, दलहनी फसलें और सब्जियां।
- **लाभ:** जलग्रहण क्षेत्रों में यह प्रणाली जल संरक्षण, मृदा अपरदन को रोकने और जल स्तर को पुन: भरने में मदद करती है।

कृषि वानिकी प्रणाली में लकड़ी उत्पादन

- **वृक्ष प्रजातियां:** टीक, यूकेलिप्टस, कसुअरीना।
- **फसलें:** मूंगफली, मक्का, दलहनी फसलें।
- **लाभ:** यह प्रणाली वृक्षों से लकड़ी और फसलों से अतिरिक्त आय उत्पन्न करती है। यह प्रणाली सीमांत भूमि में भी उपयोगी होती है।

ऐले क्रॉपिंग

- **वृक्ष प्रजातियां:** ग्लिरिसिडिया, लेयूकेना और मोरिंगा।
- **फसलें:** अनाज जैसे चावल, गेहूं और दलहनी फसलें।
- **लाभ:** यह प्रणाली वृक्षों को पंक्तियों में लगाकर उनके बीच में कृषि फसलों की खेती करती है। इससे मृदा की उर्वरता बढ़ती है और मृदा अपरदन को कम किया जाता है।

वन आधारित कृषि वानिकी प्रणाली

- **वृक्ष प्रजातियां:** क्षेत्रीय पारंपरिक वृक्ष प्रजातियां।
- **फसलें:** चावल, बाजरा, मक्का और सब्जियां।
- **लाभ:** यह पारंपरिक स्थानांतरित खेती की प्रणाली है, जो उत्तर-पूर्व भारत में प्रचलित है। इस प्रणाली में वन भूमि को अस्थायी रूप से साफ करके कृषि कार्य किए जाते हैं। उचित कृषि वानिकी प्रथाओं से इसे स्थिर किया जा सकता है।

पौध में जल छिड़काव

मृदा माइक्रोबियल गतिविधि और जैव विविधता में वृद्धि

मृदा स्वास्थ्य मृदा के सूक्ष्मजीवों की विविधता और गतिविधि से निकटता से जुड़ा हुआ है, जिसमें बैक्टीरिया, कवक और केंचुए शामिल हैं। कृषि वानिकी निम्न तंत्रों के माध्यम से मृदा की जैव विविधता का समर्थन करती है:

- **माइक्रोबियल आवास निर्माण:** वृक्षों और संबंधित पौधों की विविध जड़ प्रणाली मृदा के सूक्ष्मजीवों के लिए विभिन्न आवास प्रदान करती है। यह मृदा के रोगाणुओं की प्रचुरता और विविधता को बढ़ाता है, जो बदले में पोषक चक्रण और कार्बनिक पदार्थों के टूटने में सुधार करता है।
- **माइकोरिजल कवक:** कृषि वानिकी प्रणाली माइकोरिजल कवक के विकास को बढ़ावा दे सकती है, जो वृक्ष और फसल की जड़ों के साथ सहजीवी संबंध बनाते हैं। ये कवक पोषक तत्वों के अवशोषण के लिए सतह क्षेत्र को बढ़ाते हैं। पौधों को पोषक तत्वों, विशेष रूप से फॉस्फोरस तक पहुंचने में मदद करते हैं, जो अक्सर मृदा में सीमित होता है।
- **केंचुआ गतिविधि:** कृषि वानिकी प्रणालियों में जड़ें और कार्बनिक पदार्थ केंचुओं के लिए आहार और आश्रय प्रदान करते हैं। ये जीव चैनल बनाकर, मृदा को हवा देकर और नमी बनाए रखने की क्षमता बढ़ाकर मृदा की संरचना में सुधार करते हैं।

बहुपयोगी है कृषि वानिकी प्रणाली

मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव

कृषि वानिकी के विशेष प्रभावों में से एक मृदा के स्वास्थ्य में वृद्धि है। इस प्रणाली में वृक्षों और अन्य बारहमासी वनस्पतियों को शामिल करके, मृदा की उर्वराशक्ति, संरचना और जैव विविधता को बढ़ाया जा सकता है। इससे मृदा की गुणवत्ता और कृषि उत्पादकता में दीर्घकालिक सुधार हो सकता है।

मृदा की संरचना और स्थिरता में वृद्धि

मृदा की संरचना अपने कणों की व्यवस्था को संदर्भित करती है, जो इसकी छिद्र, जलधारण क्षमता और वातन को प्रभावित करती है। कृषि वानिकी मृदा की संरचना को कई तरीकों से सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है:

- **जड़ प्रणाली की जटिलता:** वृक्षों की गहरी और व्यापक जड़ प्रणाली मृदा की परतों को तोड़ सकती है, जिससे हवा और पानी के संचार के लिए चैनल बन

सकते हैं। यह मृदा की पारगम्यता को बढ़ाता है और जलभराव को रोकता है, वृक्षों एवं फसलों दोनों के लिए बेहतर जड़ विकास को बढ़ावा देता है।

- **मृदा अपरदन की रोकथाम:** वृक्षों की चंदवा आवरण और जड़ प्रणाली मृदा को स्थिर करने में मदद करती है, जिससे हवा और पानी से क्षरण की आशंका कम होती है। वृक्ष मृदा की सतह पर वर्षा के वेग को कम करते हैं और मृदा को अपनी जड़ों से बांधे रखने में मदद करते हैं। इससे ऊपरी मृदा के नुकसान को रोका जा सकता है। यह विशेष रूप से कटाव से ग्रस्त क्षेत्रों में फायदेमंद है, जैसे कि पहाड़ी इलाके।
- **मृदा एकत्रीकरण:** वृक्षों से कार्बनिक पदार्थ, उनकी जड़ प्रणालियों के साथ, मृदा के एकत्रीकरण में योगदान करते हैं। अच्छी मृदा का एकत्रीकरण पानी को बनाए रखने, कटाव का विरोध करने और स्वस्थ जड़ विकास का समर्थन करने की क्षमता को बढ़ाता है।

जल प्रतिधारण और नमी विनियमन

कृषि वानिकी प्रणालियां मृदा में जल प्रतिधारण में काफी सुधार कर सकती हैं, जो अनियमित वर्षा या सूखे की स्थिति वाले क्षेत्रों के लिए अति महत्वपूर्ण है:

- **वृक्ष की छाया:** वृक्ष की छाया मृदा को छायांकित करके सतह के वाष्पीकरण को कम करती है, जिससे नमी के संरक्षण में मदद मिलती है। इसके अतिरिक्त, वृक्षों की जड़ें मृदा की परतों को तोड़कर पानी के संचार में सुधार करने में मदद करती हैं।
- **जल निस्पंदन:** वृक्षों की गहरी जड़ें भी पानी को फिल्टर कर सकती हैं। सतह के अपवाह को कम कर सकती हैं और बेहतर जल गुणवत्ता को बढ़ावा दे सकती हैं। अतिरिक्त वर्षा जल को एकत्र करके और इसे मृदा में संचार की अनुमति देकर, कृषि वानिकी प्रणाली स्थिर नमी के स्तर को बनाए रखने में मदद करती हैं, सूखे के तनाव और जलभराव दोनों को रोकती हैं।

मृदा कटाव रोकने में कारगर कृषि वानिकी प्रणाली

कार्बन पृथक्करण और मृदा कार्बन भंडारण

कृषि वानिकी प्रणाली कार्बन अनुक्रम के माध्यम से जलवायु परिवर्तन शमन में योगदान करते हैं। वृक्ष अपने बायोमास और मृदा में कार्बन को स्थिर और संग्रहीत करते हैं। समय के साथ, कार्बन का यह संचय मृदा के स्वास्थ्य में सुधार करता है:

- **मृदा कार्बनिक कार्बन में वृद्धि:** वृक्षों की जड़ें, पत्तियां और शाखाएं मृदा के जैविक कार्बन पूल में योगदान करती हैं। मृदा के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए मृदा में कार्बनिक कार्बन महत्वपूर्ण है। यह मृदा की संरचना, उर्वरता और माइक्रोबियल गतिविधि में सुधार करता है।
- **ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करना:** कार्बन का अनुक्रमण करके, कृषि वानिकी वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा को कम कर सकती है। इससे जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम किया जा सकता है। इसके अलावा, कृषि वानिकी सिंथेटिक उर्वरकों जैसे रासायनिक आदानों की आवश्यकता को कम करती है, जो नाइट्रस ऑक्साइड, एक हानिकारक ग्रीनहाउस गैस जारी कर सकती है।

कृषि वानिकी कृषि में मृदा के क्षरण और अन्य पर्यावरणीय चुनौतियों के लिए एक आशाजनक समाधान का प्रतिनिधित्व करती है। मृदा की उर्वरता, संरचना, माइक्रोबियल गतिविधि और जल प्रतिधारण में सुधार करके, कृषि वानिकी प्रणाली स्वस्थ मृदा में योगदान करती है, जो स्थायी खाद्य उत्पादन का समर्थन करते हैं, जैसे-जैसे वैश्विक कृषि पद्धतियां स्थिरता की ओर बढ़ती हैं।

कृषि वानिकी पर्यावरणीय नेतृत्व के साथ खेती को संतुलित करने, मृदा के स्वास्थ्य को बढ़ाने और दीर्घकालिक कृषि अनुकूलता को बढ़ावा देने का एक तरीका प्रदान करती है। किसानों, नीति निर्माताओं और पर्यावरणविदों के लिए, मृदा के स्वास्थ्य में कृषि वानिकी की भूमिका को पहचानना और समर्थन करना दुनियाभर में स्थायी और उत्पादक कृषि प्रणालियों को प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण है।

चुनौतियां

कृषि वानिकी प्रणाली के अंतर्गत मृदा के स्वास्थ्य के लिए कई लाभ प्रदान करने के अलावा चुनौतियां भी मौजूद हैं:

- **प्रबंधन में जटिलता:** कृषि वानिकी प्रणाली मोनोकल्चर खेती की तुलना में अधिक जटिल है। इससे लाभ प्राप्त करने के लिए सावधानीपूर्वक योजना और प्रबंधन की आवश्यकता होती है। किसानों को मृदा के स्वास्थ्य के लिए लाभों को अनुकूलित करने के लिए वृक्ष प्रजातियों के चयन, रोपण घनत्व और फसल संगतता जैसे कारकों पर विचार करना चाहिए।
- **दीर्घकालिक लाभ:** कृषि वानिकी प्रणाली के मृदा स्वास्थ्य लाभों को पूरी तरह से स्पष्ट होने में वर्षों लग सकते हैं। अल्पावधि में, किसानों को उपज या मृदा की उर्वराशक्ति में तत्काल वृद्धि नहीं दिख सकती है। समय के साथ, कृषि वानिकी में निवेश बेहतर मृदा की गुणवत्ता और स्थिरता के माध्यम से भुगतान करता है।
- **भूमि उपयोग में संघर्ष:** उन क्षेत्रों में जहां भूमि सीमित है, वृक्षों को कृषि प्रणालियों में एकीकृत करना अन्य भूमि उपयोगों के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकता है। हालांकि, इसे ठीक से किया जाए, तो कृषि वानिकी मृदा के स्वास्थ्य को संरक्षित करते हुए उत्पादकता बढ़ाकर भूमि उपयोग का अनुकूलन कर सकती है।

बकरियों के लिए पौष्टिक चारा है अजोला

रमेश चन्द्रा और मगन सिंह

"अजोला एक ऐसा फर्न है जिसे किसी भी स्थान पर किसी भी समय पर आसानी से तैयार किया जा सकता है। अजोला के 1 कि.ग्रा. उत्पादन पर लगभग 2.00 रुपये की लागत आती है। एक दुधारू बकरी को मात्र 500 ग्राम अजोला खिलाकर 15 से 20 प्रतिशत अधिक दूध प्राप्त कर सकते हैं। इसके साथ ही 30 से 35 प्रतिशत आहार की बचत कर सकते हैं। अजोला खिलाने से लगभग 10 से 12 रुपये बकरी/प्रतिदिन की अतिरिक्त आमदनी प्राप्त की जा सकती है, जो अन्य हरे चारे से सम्भव नहीं है। अजोला पानी में उगने वाला एक फर्न है इसीलिए इसे जलीय फर्न भी कहा जाता है। अजोला जलीय फर्न की 7 प्रजातियों का एक वंश है, जिसे अजोलियेसी कहा जाता है। दीर्घकाल से पानी में रहने के कारण यह फर्न जलीय जीवन के लिए पूरी तरह से अनुकूलित हो गया है। इसीलिए यह आम फर्न के बजाय पूरी तरह से शैवाल की तरह दिखायी देता है। अजोला का आकार छोटा होने के कारण इसकी छोटी-छोटी शल्कों जैसी पत्तियां, परस्पर एक दूसरे के साथ मिल जाती हैं, जिससे यह पानी पर आसानी से तैरता रहता है। इसकी बालों जैसी महीन और छोटी जड़ें पानी के अन्दर लटकती रहती हैं, जो अपने पालन-पोषण के लिए आवश्यक पोषण तत्व पानी से सोखती रहती हैं।"

भारत कृषि के साथ-साथ एक पशु प्रधान देश भी है। देश की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या पशु और कृषि पर निर्भर है। देश की लगभग 70 प्रतिशत आबादी गांवों में रहकर अपने जीवनयापन और आर्थिक विकास के लिए कृषि एवं पशुधन पर निर्भर है।

सदियों से पशुपालन कृषि किसानों और गरीब परिवारों की खाद्य सुरक्षा और आमदनी का स्रोत रहा है। अत: ग्रामीण परिवारों की आर्थिक स्थिति सुधारने में कृषि एवं पशुधन का बहुमूल्य योगदान है। गांवों में ऐसे किसानों के परिवार भी हैं, जो भूमिहीन, श्रमिक लघु एवं सीमांत हैं, जो गाय या भैंस नहीं पाल सकते, ऐसे परिवारों के आर्थिक विकास के लिए बकरी पालन एक महत्वपूर्ण साधन है।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में साधन विहिन भूमिहीन, बेरोजगार, कृषि श्रमिक, सीमान्त और छोटे किसानों एवं आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों की जीवन शैली के साथ बकरी पालन सदियों से जुड़ा हुआ है। आज भी बकरी आमदनी का साधन होने के साथ-साथ दूध एवं इससे बने उत्पाद आदि की भी पूर्ति करती है।

भारत में बकरियों की लगभग 39 अधिकृत नस्लें दूध, मांस, बाल, खाद आदि के लिए पाली जाती हैं। देश के अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग बकरियों की नस्लें पाली जाती हैं। कुछ बकरियां दूध उत्पादन के लिए पाली जाती हैं तो कुछ बकरियां मांस के लिए पाली जाती हैं और कुछ मेमनों के उत्पादन के लिए पाली जाती हैं।

पशु जनगणना 2019 के अनुसार, देश में लगभग 535.78 मिलियन पशु पाले जाते हैं। इसमें लगभग 192.49 मिलियन गाय, 109.85 मिलियन भैंस और 148.88 मिलियन बकरियां पाली जाती हैं, जो देश की कुल

भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001 (हरियाणा)

सारणी 1. अजोला में पाये जाने वाले मुख्य पोषण तत्व (शुष्क भार के आधार पर)

तत्व का नाम	मात्रा (प्रतिशत)
प्रोटीन	23.5
रेशा	12.8
इथरी सत्व	2.8
राख	16.3
नाइट्रोजन रहित निष्कर्ष	12.8
कार्बोहाइड्रेट	49.5
वसा	3.24
कैल्शियम	1.19
फॉस्फोरस	1.29
मैग्नीशियम	0.36
मैंग्नीज	174.39
जस्ता	86.48
तांबा	16.73

प्रत्येक गड्ढे को सीमेंट से पक्का करना

अजोला उत्पादन हेतु स्थान चयन

अजोला उत्पादन इकाई

पशुसंख्या का 35.93, 20.50 और 27.79 प्रतिशत हैं।

पशुसंख्या की दृष्टि से देश में बकरी का दूसरा स्थान है। देश में बकरियों से लगभग 3.30 प्रतिशत दूध और 14.00 प्रतिशत मांस की प्राप्ति होती है। बकरी पालन में आहार एक महत्वपूर्ण समस्या है। आजकल चरागाह भी कम हो रहे हैं जो बकरी पालन में समस्या का कारण है। ऐसी स्थिति में हरे चारे के लिए किसानों को वैकल्पिक स्रोत पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

हरे चारे के वैकल्पिक स्रोत के रूप में अजोला एक अच्छा हरे चारे का नियमित उत्पादन स्रोत हो सकता है। अजोला एक ऐसा हरा चारा है, जो प्रोटीन और पोषक तत्वों से भरपूर है। यदि किसान अपने पशुओं के

सारणी 2. अजोला का अन्य चारों के साथ तुलनात्मक विवरण

क्र.सं.	चारा	बायोमास उत्पादन	शुष्क पदार्थ उत्पादन	प्रोटीन (प्रतिशत)
1	हाइब्रिड नेपियर	250	50	4
2	रिजका	80	16	3.4
3	लोबिया	35	7	1.5
4	ज्वार	40	3.3	0.6
5	बाजरा	40	3.2	0.6
6	सुबबूल	40	3.2	0.6
7	अजोला	1000	80	24

सारणी 3. अजोला उत्पादन पर खर्च (प्रति कि.ग्रा.)

क्र. सं.	मद	खर्च/ इकाई	कुल इकाई	कुल खर्च	खर्च/ गड्ढा/दिन
1.	गड्ढों पर खर्च (जीवनकाल 10 वर्ष)	3441.88	16	55070.00	0.94
2.	सिलपोलीन पर खर्च (जीवनकाल 4 वर्ष)	500.00	16	8000.00	0.34
3.	श्रमिक पर खर्च (रुपये 250/दिन)	250.00	-	250.00	1.95
4.	गोबर पर खर्च (2 कि.ग्रा./गड्ढा और 1 माह में 1 बार)	2.00	16	32.00	0.07
5.	सिंगल सुपर फॉस्फेट (रु 450/बोरी)	0.12	16	1.92	0.06
6.	पानी पर खर्च (प्रति माह रु 150)				0.31
7.	कुल खर्च				3.79
8.	अजोला उत्पादन/गड्ढा/दिन (किग्रा)				1.75
9.	1 कि.ग्रा. अजोला उत्पादन पर खर्च				2.17

सिफारिशें

- गड्ढे के आसपास तापमान 25 से 30 डिग्री सेल्सियस होना चाहिये।
- गर्मी, तेज धूप अथवा ठंड से बचाव के लिए हरित गृह वाले जाल का प्रयोग किया जा सकता है।
- गड्ढे के पानी का पी-एच मान 5.5 से 7.0 के बीच होना चाहिये।
- पशुओं को खिलाने से पहले अजोला को साफ पानी में अच्छी तरह से 5-6 बार धोना चाहिये, जिससे गोबर की गंध समाप्त हो जाये।
- जब पशुओं को पहली बार अजोला खिलाना हो, तो इसके साथ थोड़ी दाने की मात्रा मिला लेनी चाहिये। ऐसा करने से धीरे-धीरे खाने की आदत बन जायेगी। जब खाने की आदत बन जाये तब धीरे-धीरे दाने की मात्रा कम कर देनी चाहिये।
- अजोला को मुर्गियों, बकरी, खरगोश, भेड़, शूकर, मछली एवं बत्तख को भी पौष्टिक आहार के रूप में खिलाया जा सकता है। अधिक प्रोटीन होने के कारण वृद्धि एवं दुग्ध उत्पादन पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

जल रिसाव से बचाव हेतु सिलपोलीन

बकरियों के लिए जरूरी

बकरी ऐसा पशु है, जो चरना पसन्द करती है। देश में चरागाह पर्याप्त नहीं हैं। बकरी पालन ऐसे किसानों के हाथ में है, जिनके पास खिलाने के लिए पर्याप्त चारा नहीं है, जिससे बकरियों की पोषण आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाती। इसके परिणामस्वरूप उत्पादकता कम हो जाती है। अत: अजोला एक ऐसा आहार है, जिसमें सभी पोषक तत्व उपलब्ध हैं। इससे इन बकरियों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति आसानी से हो जाती है। यह प्रोटीन, आवश्यक अमीनो अम्ल, विटामिन 'ए' और 'बी', बीटा कैरोटिन वृद्धि प्रवर्तक और खनिज जैसे-कैल्शियम, फॉस्फोरस, पोटेशियम, लोहा, तांबा, मैग्नीशियम आदि से भरपूर है। अजोला में पाये जाने वाला प्रमुख तत्व प्रोटीन है, जो पशुओं का मुख्य आहार है। इसके अलावा अजोला कैल्शियम का अच्छा स्रोत है जो दुग्ध उत्पादन के लिए आवश्यक है।

आहार में अजोला का उपयोग करते हैं, तो यह पशुओं के स्वास्थ्य के साथ-साथ दुग्ध उत्पादन में भी वृद्धि कर सकता है।

अजोला उत्पादन के लिए उस जमीन का उपयोग किया जा सकता है, जो कृषि के लिए उपयुक्त नहीं है। कोई भी पशुपालक अजोला की खेती आसानी से एवं अपने घर के आसपास खाली पड़ी भूमि पर छोटी-छोटी क्यारी बनाकर कर सकता है। क्यारियां कच्ची या पक्की दोनों तरह से

शीट के ऊपर मिट्टी का बिखराव

तैयार की जा सकती हैं। कच्ची क्यारी में प्लास्टिक की शीट या सिलपोलीन शीट का उपयोग किया जा सकता है, लेकिन इसका जीवनकाल कम होता है।

उत्पादन

अजोला का उत्पादन हर तरह की जलवायु में किसी भी जगह आसानी से किया जा सकता है। अजोला के उत्पादन के लिए कोई उपजाऊ जमीन की आवश्यकता नहीं होती है। अजोला उथले गड्ढों में उत्पादित किया जाता है। गड्ढे ऐसी जगह बनाने चाहिये, जहां पर नियमित साफ पानी उपलब्ध हो।

अजोला उत्पादन विधि बहुत ही सरल है और किसान आसानी से इसे कर सकते हैं। गड्ढे की लम्बाई आवश्यकतानुसार कम या अधिक की जा सकती है। चौड़ाई 3 फीट से कम नहीं होनी चाहिये। दीवार की चौड़ाई 9 इंच उपयुक्त होती है। गड्ढों की संख्या आवश्यकतानुसार बनायी जा सकती है। जगह का चयन करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखें कि जमीन समतल हो, ऊंचाई पर हो और आसपास

गड्ढे में गोबर के घोल को मिलाना

गोबर खाद का मिश्रण

उत्पादन से लाभ

- अजोला सस्ता और अच्छी गुणवत्ता वाला हरा चारा है।
- गुणवत्ता पर नियंत्रण संभव।
- दुग्ध उत्पादन में (15-20 प्रतिशत) वृद्धि एवं प्रति कि.ग्रा. दुग्ध उत्पादन लागत में कमी।
- अजोला खिलाने से पशुओं में परिपक्वता जल्दी आती है।
- वर्षभर हरे चारे की आपूर्ति।
- कम लागत की आवश्यकता।
- शत-प्रतिशत कार्बनिक हरा चारा।
- उर्वरक एवं कीटनाशक मुक्त हरा चारा।
- अनुपजाऊ भूमि का सदुपयोग।

पानी न ठहरता हो। अजोला उत्पादन विधि इस प्रकार है:

- सर्वप्रथम गड्ढों का निर्माण करना चाहिये। गड्ढों की लम्बाई 10-15 फीट, चौड़ाई 3-5 फीट और गहराई 1 फीट होनी चाहिये।
- एक पॉलीथीन शीट या सिलपोलीन शीट गड्ढे में बिछा दें। शीट इतनी बड़ी होनी चाहिये कि वह गड्ढे के ऊपर तक भलीभांति आ जाये और किनारों को आसानी से ढक ले। शीट बिछाते समय इस बात का विशेष ध्यान रखें कि शीट में कोई फोल्ड नहीं होना चाहिये।
- पॉलीथीन शीट को चारों तरफ से ईंटों से दबा देना चाहिये, जिससे शीट अपनी जगह पर ही स्थिर हो जाये।
- शीट के ऊपर एक से दो इंच भुरभुरी मिट्टी और गोबर की खाद या केंचुआ खाद के 10 से 15 कि.ग्रा. मिश्रण को समानान्तर बिछा देना चाहिये।

पोषण से भरपूर अजोला

अजोला कल्चर का पानी के ऊपर छिड़काव

- इसके बाद 1.5 से 2.0 किलो गोबर का घोल बनायें और गड्ढे में 6-8 इंच की ऊचाई तक पानी से भर दें।
- 250 से 500 ग्राम अजोला कल्चर पानी के ऊपर समान रूप से छिड़काव कर देना चाहिये। अजोला मिश्रण का छिड़काव सुबह के समय करना होता है।
- 10-15 दिनों के बाद एक गड्ढे से 1.5-2.5 कि.ग्रा. अजोला प्रतिदिन प्राप्त किया जा सकता है।
- प्रत्येक 15 दिनों के बाद गोबर का घोल बनाकर एवं 30 से 40 ग्राम रॉक-फॉस्फेट प्रत्येक गड्ढे में डाल देना चाहिये, ताकि अजोला को पर्याप्त मात्रा में पोषण मिलता रहे।
- रोग से बचाव के लिए 0.5 से 1.0 किलो नीम की खली का प्रयोग प्रत्येक 2 से 3 सप्ताह के अन्तराल में किया जा सकता है।
- जैसे ही पानी का स्तर 10 सें.मी. से नीचे पहुंचे तुरंत साफ पानी से गड्ढे को भर देना चाहिये।

बकरियों को कैसे खिलाएं

बकरी एक चरने वाला पशु है और अपनी स्वेच्छा से घास का चयन करती है। अजोला उत्पादन में गोबर का उपयोग होता है अतः अजोला में गोबर की महक आना स्वभाविक है, इसीलिए बकरी अजोला को अन्य चारे की तरह नहीं खाती।

इसको खिलाने के लिए अति आवश्यक है कि इसे गड्ढे से निकालने के बाद 5-6 बार स्वच्छ पानी से धोना चाहिये, जिससे गोबर की महक समाप्त हो जाये। धोने के बाद 15-20 मिनट के लिए छलनी में रखना चाहिये, जिससे पानी पूर्णरूप से छन जाये। अन्त में आवश्यकतानुसार दाने में मिलाकर खिलाया जा सकता है।

बकरियों को अजोला सुखाकर, ताजा अथवा खली बनाकर खिलाया जा सकता है। सूखा अजोला बकरियां बड़े चाव से खाती हैं अतः सूखा अजोला कभी भी खिलाया जा सकता है। ताजा अजोला शुरू के दिनों में कम खाती हैं, लेकिन बाद में अच्छी तरह से खाने लगती हैं। एक बकरी के लिए 500 ग्राम ताजा अजोला प्रतिदिन खिलाया जा सकता है।

लागत

भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान सस्थान, करनाल (हरियाणा) में किये गये शोध से पता चलता है कि एक कि.ग्रा. उत्पादन पर लगभग 2.00 से 2.50 रुपये खर्च आता है। ईंट और सीमेंट से बनाये गये गड्ढों में खर्च और कम हो जाता है, क्योंकि इनका जीवनकाल अधिक होता है। जबकि सिलपोलीन का जीवनकाल 3 से 4 वर्ष होता है।

बकरियों में बढाएं पोषण मान

लेखकों से अनुरोध

आज सूचना प्रौद्योगिकी के बदले हुए कदमों को हमारे पाठक और लेखक दोनों ने पहचाना है। पाठकगण लेखकों से सीधी बात कर सकें, इसलिए हम चाहते हैं कि सभी लेखक अपने लेख पोर्टल epatrika.icar.org.in में भेजने के साथ अपना ई-मेल पता तथा मोबाइल नम्बर अवश्य दें।

संपादक

कृषि क्षेत्रों के लिए लाभकारी सौर ऊर्जा योजनाएं

नरेन्द्र मोहन सिंह, रंजिनी वी.आर., सूर्य प्रताप सिंह नगदली और **अलका सिंह**

"सौर ऊर्जा का उपयोग कृषि में सिंचाई, फसल सुखाने, ग्रीन हाउस हीटिंग, प्रकाश व्यवस्था,खेती उपकरणों को चलाने, जल शुद्धिकरण, स्वचालन, पशुपालन प्रबंधन, मृदा में नमी की निगरानी और ग्रामीण विद्युतिकरण के लिए किया जा सकता है। विभिन्न अनुसंधानों ने सौर प्रौद्योगिकियों की आर्थिक व्यवहार्यता को साबित किया है, जो किसानों और ग्रामीण समुदायों के लिए लाभकारी हो सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक विकास के लिए एवं सामाजिक मूलभूत ढांचे की सेवाओं को और अधिक मजबूत करने के लिए सौर ग्राम योजना और अधिक महत्वपूर्ण बन जाती है। सौर ऊर्जा ग्रामीण किसानों के परिवारों को बहुत ही कम लागत में सस्ती और भरोसेमंद बिजली आपूर्ति में मदद करती है। इसके साथ-साथ विद्युत वितरण कंपनियों डिसकॉम की बिजली खरीद लागत को घटाने में भी सहायक है। ग्रामीण भारत, ऊर्जा परिवर्तन के लिए इस दिशा में प्रयासरत है। कुछ राज्यों नें अपने गांवों को सौर ऊर्जा से सुसज्जित करने का संकल्प लिया है, जिनमें बिहार, ओडिशा एवं गुजरात मुख्य हैं।"

सौर ऊर्जा द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब किसानों के परिवारों, वहां के स्कूलों, स्वास्थ्य केन्द्रों एवं अन्य ग्रामीण सहकारी संस्थाओं को भी निर्बाध बिजली पहुंचा कर सभी समुदायों की मदद की जा सकती है।

सौर ऊर्जा दूरदराज के इलाकों में बेहतर गुणवत्ता के साथ बिजली आपूर्ति करती है। यहां पर अपने विकेन्द्रीकृत और मॉड्यूलर डिजाइन के साथ विकेन्द्रीकृत नवीकरणीय ऊर्जा तकनीक जीवन और आजीविका के विभिन्न पहलुओं को बेहतर बनाने एवं सक्षम बनाने में मदद करती है। समुदायों की मुख्य भूमिका के साथ स्वच्छ ऊर्जा परिवर्तन को न्यायसंगत और समावेशी बनाने की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण प्रगति है।

कृषि अर्थशास्त्र संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

विश्व में पिछले कुछ दशकों से वैश्विक जलवायु परिवर्तन, कच्चे तेल की कीमतों में अस्थिरता और सीमित जीवाश्म ईंधनों की मात्रा के चलते सौर, पवन एवं बायोमास जैसे नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। यह माना जा रहा है कि नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत सामाजिक और आर्थिक विकास, सुरक्षित ऊर्जा आपूर्ति तथा पर्यावरण और स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभावों को कम करने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

सरकारी प्रयास

नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय द्वारा 2018 में, राष्ट्रीय सौर मिशन के तहत प्रमुख सौर कार्यक्रमों की योजनाबद्ध श्रृंखला में नई योजना किसान ऊर्जा सुरक्षा एवं उत्थान महाभियान (कुसुम योजना) की शुरुआत की गई, जिसमें तीन प्रावधान हैं:

- भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में 10,000 मेगावॉट विकेन्द्रीकृत ग्राउंड माउंटेड ग्रिड से जुड़ी नवीकरणीय ऊर्जा संयंत्रों की स्थापना करना। इसमें किसान, सहकारी समितियां, पंचायतें या एफपीओ अपनी भूमि में 500 किलोवॉट से 2 मेगावॉट क्षमता के ग्रिड से जुड़े सौर ऊर्जा संयंत्र स्थापित कर सकते हैं।
- नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय द्वारा ग्रामीण कृषि क्षेत्रों में 17.50 लाख स्टैंड अलोन सौर ऊर्जा संचालित कृषि पंपों की स्थापना, जिनकी व्यक्तिगत पंप क्षमता 7.5 हॉर्स पावर तक होगी।
- मंत्रालय द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में मौजूदा ग्रिड से जुड़े कृषि पंपों का सौरीकरण, जिससे किसान डिसकॉम को अतिरिक्त आय प्राप्त करने के लिए उत्पन्न अतिरिक्त सौर ऊर्जा बेच सकें।

भारत में सौर ऊर्जा को ग्रिड से जुड़े सौर ऊर्जा प्रणाली और ऑफ-ग्रिड सौर प्रणालियों जैसे छत पर सौर प्रणाली, सौर प्रकाश व्यवस्था, सौर फोटो वोल्टाइक (एसपीवी) सिंचाई पंप के माध्यम से प्रोत्साहित किया जा रहा है। हाल ही में, सौर फोटो वोल्टाइक प्रणाली लंबी कार्य क्षमता और तेजी से घटती लागत के कारण सिंचाई जल के प्रयोग के लिए आकर्षक और सस्ती होकर किसानों के लिए महत्वपूर्ण बन गई है।

वर्तमान समय सौर ऊर्जा चालित सिंचाई प्रणाली सबसे अच्छे विकल्पों में से एक है, जिसमें महंगे रखरखाव की आवश्यकता नहीं होती। यह प्रणाली प्रदूषण रहित होती है एवं डीजल या प्रोपेन आधारित जल पंपिंग प्रणालियों की तुलना में ग्रीन-हाउस गैसें नहीं छोड़ती। जहां अन्य बिजली स्रोत उपलब्ध नहीं हैं, वहां दूरस्थ क्षेत्रों में सिंचाई और पीने के पानी के लिए पीवीएआर जल पंपिंग इकाइयां सबसे व्यवहार्य और आर्थिक रूप से लाभकारी पाई गई हैं।

सौर ऊर्जा चालित सिंचाई प्रणाली के लिए योजनाएं

वर्ष 2030 में 500 गीगावॉट से अधिक महत्वाकांक्षी नवीकरणीय ऊर्जा लक्ष्य को पूरा करने के लिए कृषि में सौर ऊर्जा का उपयोग महत्वपूर्ण है। यह कृषि में जुड़े किसानों को आजीविका प्रदान करता है। नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय ने राज्य नोडल एजेंसियों के माध्यम से कृषि मंत्रालय के साथ समन्वय में वर्ष 2014-15 के दौरान सिंचाई के लिए सौर फोटो वोल्टाइक कार्यक्रम शुरू किया।

नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय राज्यों को सौर पंपों की स्थापना के लिए 30 प्रतिशत पूंजीगत सब्सिडी प्रदान करता है जबकि राज्यवार सब्सिडी अलग-अलग होती है। उदाहरण के लिए, राजस्थान, सौर फोटो वोल्टाइक पंपों की स्थापना में अग्रणी है। यह राज्य उन किसानों को 56 प्रतिशत सब्सिडी प्रदान करता है, जिनके पास कम से कम 0.5 हैक्टर भूमि है और वे ड्रिप सिंचाई का उपयोग करते हैं।

अन्य राज्यों जैसे आंध्र प्रदेश, बिहार, उत्तर प्रदेश आदि में 45-60 प्रतिशत पूंजी लागत को सब्सिडी के माध्यम से कवर किया जाता है। इस कार्यक्रम के तहत अब तक लगभग 2.37 लाख सौर पंप स्थापित किए गए हैं। राजस्थान, चंडीगढ़ और आंध्र प्रदेश सौर फोटो वोल्टाइक पंप की स्थापना में शीर्ष तीन प्रदर्शनकर्ता हैं। अन्य प्रमुख कृषि राज्य जैसे उत्तर प्रदेश, गुजरात, तमिलनाडु और कर्नाटक भी सौर फोटो वोल्टाइक स्थापना में महत्वपूर्ण हिस्सा रखते हैं।

वर्ष 2020 के बजट में, सरकार ने 20 लाख किसानों को स्टैंड-अलोन सौर पंप स्थापित करने में मदद करने के लिए कुसुम योजना के विस्तार की घोषणा की एवं मौजूदा जल पंप सेटों का सौरीकरण 15 लाख किसानों तक बढ़ाया गया है। इसके अलावा, वे किसान जिनके पास अनुपयोगी या बंजर भूमि है वहां वे सौर ऊर्जा उत्पादन इकाइयां स्थापित कर सकते हैं और अतिरिक्त ऊर्जा को सौर ग्रिड को भी बेच सकते हैं।

यह किसानों के लिए फायदेमंद होगा क्योंकि वे अतिरिक्त ऊर्जा की बिक्री से आय प्राप्त करेंगे। यह राज्य सरकार के लिए भी लाभकारी होगा क्योंकि इससे उनके न्यूनतम नवीकरणीय खरीद दायित्व में योगदान होगा।

कुसुम योजना का भारत में ऊर्जा मांग को पूरा करने और ग्रामीण गरीबी को कम करने में बहुत बड़ा संभावित योगदान है। पीएम कुसुम योजना के कार्यान्वयन में कई कमियां भी महसूस की गयी हैं जैसे कि उच्च स्थापना लागत और डिसकॉम द्वारा सौर ऊर्जा के लिए कम दर। ये कारक इस योजना को अपनाने की दर को प्रभावित कर रहे हैं। सरकार को इन मुद्दों का निवारण करने की आवश्यकता है, ताकि लक्षित उद्देश्य प्राप्त किया जा सके।

छत पर सौर ऊर्जा और स्टैंड-अलोन सौर पंप को ग्रिड से जोड़ना सराहनीय पहल है। इसे ग्रामीण ऊर्जा मांग को पूरा करने और 2030 के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

सौर ऊर्जा है पर्यावरण अनुकूल

राज्यवार सफलता

बिहार, ओडिशा और गुजरात के कुछ गावों में सौर ऊर्जा लगाने के सरकारी प्रयास सफल रहें हैं। ये अपनी जलवायु कार्य योजनाओं पर काम कर रहे हैं। गुजरात के मोडेरा सौर ऊर्जा गांव परियोजना में सफलता मिली है और ओडिशा एवं बिहार को अपेक्षित परिणाम का इंतजार है।

बिहार में कुछ वर्ष पहले धरनाई गांव में 100 किलोवॉट का सोलर मिनी ग्रिड लगाया गया था। इससे करीब 400 घरों, दो स्कूल, एक स्वास्थ्य केंद्र, 50 वाणिज्य संस्थानों एवं एक किसान प्रशिक्षण केंद्र को बिजली मिलती है। कुछ समस्याओं का निदान करने के उपरान्त सरकार के प्रयास सफल रहे हैं।

भारत सरकार ने ऊर्जा दक्षता, विद्युत गतिशीलता, भवन निर्माण दक्षता, ग्रिड से जुड़े ऊर्जा भंडारण और हरित बॉण्ड के लिये कई घोषणाएं की जो नवीकरणीय ऊर्जा को प्रोत्साहन देने में अहम भूमिका निभाएंगी। भारत सरकार ने वर्ष 2070 तक नेट-जीरो कार्बन उत्सर्जन तथा वर्ष 2030 तक भारत की नवीकरणीय ऊर्जा स्थापित क्षमता 500 गीगावॉट तक विस्तारित करने का लक्ष्य रखा है।

उपरोक्त लक्ष्य को प्राप्त करने तथा नवीकरणीय ऊर्जा को बढ़ावा देने हेतु सरकार द्वारा कई प्रयास किये जा रहे हैं, जैसे-राष्ट्रीय बायोगैस और खाद्य प्रबंधन कार्यक्रम, सूर्यमित्र कार्यक्रम, सौर ऋण कार्यक्रम, पी.एम. कुसुम योजना, उत्पादन से जुड़ी प्रोत्साहन योजना, सौर पार्क योजना, केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम योजना, हाइड्रोजन मिशन, अंतर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन तथा ऐसे में नवीकरणीय ऊर्जा में आत्मनिर्भरता भारत की आर्थिक और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये भी अहम है। ■

भविष्य की ऊर्जा मांग की पूरक

विश्व में पिछले कुछ वर्षों से कई देशों में सौर ऊर्जा उद्योग, खासकर चीन, यूरोप और अमेरिका में तेजी से बढ़ रहा है। भारत में 4-7 किलोवॉट प्रति वर्ग मीटर दैनिक औसत सौर विकिरण और लगभग 1500-2000 धूप घंटे प्रति वर्ष की प्रचुर मात्रा में सौर विकिरण के साथ, सौर ऊर्जा की मांग को पूरा करने की क्षमता रखती है। भारत सरकार द्वारा वर्ष 2010 में शुरू किये गए राष्ट्रीय सौर मिशन ने सौर ऊर्जा के कृषि क्षेत्रों में उपयोग को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। सरकार ने वर्ष 2022 में इस मिशन के माध्यम से 100 गीगावॉट सौर ऊर्जा उत्पादन का लक्ष्य प्राप्त किया। भारत में कुल स्थापित 310 गीगावॉट क्षमता में से नवीकरणीय ऊर्जा ने 14.8 प्रतिशत हिस्सा हासिल किया है, जबकि थर्मल ऊर्जा का हिस्सा 69.4 प्रतिशत है। देश में नवीकरणीय ऊर्जा उत्पादन की कुल क्षमता 1096 गीगावॉट अनुमानित है। इसमें सौर ऊर्जा का हिस्सा सबसे अधिक (68.33 प्रतिशत) है, उसके बाद पवन ऊर्जा (27.58 प्रतिशत), लघु जल-विद्युत ऊर्जा (1.80 प्रतिशत) और बायोमास ऊर्जा (1.60 प्रतिशत) है। नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत की कुल स्थापित क्षमता (वर्ष 2018 तक) 73 गीगावॉट है, जिसमें सौर का 33.15 प्रतिशत हिस्सा है, जो पवन ऊर्जा (47.70 प्रतिशत) के बाद आता है। इसका मतलब है कि नवीकरणीय स्रोत, विशेष रूप से सौर, वर्तमान और भविष्य की ऊर्जा मांग को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा प्रकाशित लोकप्रिय बागवानी पत्रिका

‘फल फूल’

(द्विमासिक)

- विभिन्न प्रकार के फलों के उत्पादन की विधियां
- पुष्पोत्पादन और सब्जी उत्पादन की उन्नत तकनीकें
- फल प्रसंस्करण की नई विधियां
- बागवानी से आमदनी
- फल बागानों का वैज्ञानिक प्रबंधन
- नर्सरी से कमाई
- फलों और पुष्पों की व्यावसायिक खेती
- नई किस्में
- नियमित स्तंभ ‘अगले माह के बागवानी कार्यकलाप’ फल और फूलों के क्षेत्र की अनुसंधान उपलब्धियों की जानकारियों सहित बागवानी के विविध सामयिक मुद्दों पर कृषि वैज्ञानिकों के लेखों का प्रकाशन

पत्रिका मूल्य:
एक प्रति : 30 रुपये
वार्षिक सदस्यता शुल्क : 150 रुपये

मंगाने के लिए संपर्क करें

व्यवसाय प्रबंधक
कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन–1, पूसा गेट
नई दिल्ली–110012
दूरभाष : 011–25843657, ईमेल : bmicar@icar.org.in
वेबसाइट : www.icar.org.in

मई के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह, कपिला शेखावत, प्रवीण कुमार उपाध्याय, एस. एस. राठौर और **अंजली पटेल**

मई माह जिसे आमतौर से वैशाख-ज्येष्ठ भी कहा जाता है, में भारत के अधिकांश हिस्सों में ग्रीष्म ऋतु का चरम होता है। रबी फसलों जैसे-गेहूं, जौ, चना, मसूर एवं मटर की कटाई-मड़ाई एवं गहाई इस समय तक पूर्ण हो जाती है तथा इन फसलों का सुरक्षित भंडारण इस समय एक महत्वपूर्ण चुनौती होती है। अनाज के साथ-साथ भूसा भी एक बहुमूल्य उत्पाद है। अतः इनका भण्डारण भी सावधानीपूर्वक करना चाहिए। रबी फसलोत्पाद को वैज्ञानिक तरीके से सुरक्षित रखना बहुत आवश्यक है। इस समय खाली खेतों में ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई और मृदा सौरीकरण का भी विशेष महत्व होता है। भारतीय कृषि को उन्नत एवं आर्थिक रूप से लाभदायक बनाने हेतु आवश्यक है कि समय-बद्ध कार्य-योजना के तहत खेती के कार्य संपन्न किए जाये।

मई के महीने में सिंचित क्षेत्रों में जायद की फसलें उगाई जाती हैं। समय पर बोई गयी फसलें जैसे-मूंग, उड़द, लोबिया, मूंगफली, सूरजमुखी, गन्ना, कपास, धान की नर्सरी, चारा फसलें, हरी खाद वाली फसलें, औषधीय और मेंथा की फसलों, सब्जी फसलें, बागवानी फसलें, पुष्प एवं सगंधीय पौधे आदि पौध अवस्था में हैं। अतः इनका उचित प्रबंधन आवश्यक है।

- उपलब्ध भूमि एवं जलवायु तथा संसाधनों के अनुसार फसलो एवं उन्नत प्रजातियों का चयन, सही समय पर उपयुक्त विधि से बुआई, मृदा परीक्षण के आधार पर संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन, फसल की क्रांतिक अवस्थाओं पर सिंचाई, खरपतवार, कीट एवं रोग नियंत्रण के आवश्यक उपाय तथा विपणन बेहद जरूरी है।
- ग्रीष्मकालीन खेती के लिए इन फसलों को विशेष रूप से नमी तनाव से बचाना बेहद जरूरी होता है। मृदा में उपयुक्त नमी प्रबंधन के साथ-साथ सिंचाई जल की उपयोग दक्षता पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। इसके साथ ही उपयुक्त सिंचाई विधि और समय के चयन पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। मई में किये जाने वाले प्रमुख कृषि कार्यों का विवरण निम्नानुसार है:

सस्य विज्ञान संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110 012

फसलों का कटाई उपरांत प्रबंधन

- कई बार किसानों द्वारा अनाज भण्डारण के लिए उपयुक्त उपाय करने के बावजूद जरा सी चूक हो जाये तो फसल उत्पाद में भारी नुकसान होता है और वर्षभर की मेहनत पर पानी फिर जाता है। कई बार तो यह मनुष्यों एवं पशुओं के उपयोग के योग्य भी नहीं होता।
- चना, मटर एवं मसूर के दानों पर सरसों, मूंगफली, सोयाबीन, तिल एवं नारियल का तेल 6-7 मिली एवं 2 ग्राम हल्दी पाउडर/कि.ग्रा. की दर से उपचारित कर स्टील के बर्तन में भंडारण कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, वैज्ञानिक विधि द्वारा निर्मित पात्र पूसा बीन, पंतनगर कुठला एवं हापुड़ बीन आदि का प्रयोग करना चाहिए।
- वैज्ञानिक तरीके से अनाज एवं बीज का भण्डारण करने पर कीटों एवं

रोगों का प्रकोप कम होता है। इससे अनाज एवं बीज लम्बे समय तक स्वस्थ और सुरक्षित रह सकते हैं। अनाज एवं बीज को भण्डारण से पहले ठीक प्रकार से सुखा लेना चाहिए, क्योंकि अनाज में नमी अधिक होने पर अनेक कीटों जैसे-अनाज का पतंगा *(साइटोट्रोगा सिरियलेला)*, दाल का ढोरा *(कैलोसोब्रूकस मैकूलेटस)*, खपरा बीटल *(ट्रोगोडरमा ग्रेनेरियम)*, सूंडवाली सुरसुरी *(साइटोफिलस ओरायजी)*, घुन या छोटा छिद्रक *(राइजोपरथा डोमिनिका)*, चावल का पतंगा *(कोरसायरा सिलोनिकी)* एवं आटे का कीट *(ट्राइबोलियम कैस्टेनियम)* आदि का प्रकोप बढ़ जाता है।

- भण्डारण के लिए धान्य वाली फसलों में नमी की मात्रा 8-10 प्रतिशत तथा तिलहनी एवं दलहनी फसलों में 6-8 प्रतिशत उपयुक्त मानी जाती है। शोध द्वारा पाया गया है कि भण्डारण के समय धान्य फसलों के बीज में 10-12 प्रतिशत से अधिक नमी होने पर कीटों तथा 14-15 प्रतिशत से अधिक होने पर फफूंदजनित रोगों का प्रकोप होने लगता है। इसके साथ ही 15 प्रतिशत से अधिक नमी होने पर बीजों की अंकुरण दर प्रभावित होती है।
- भण्डारण हेतु सबसे पहले भण्डारगृह वाली जगह पर अच्छी प्रकार से साफ सफाई करनी चाहिए। पुराने अवशेषों, मकड़ी के जालों को निकालकर साफ कर देना चाहिए एवं दीवारों या फर्श पर पड़ी दरारों को सीमेंट से बंद कर देना चाहिए।
- कीटों से बचाव के लिए मैलाथियॉन 50 ई.सी. मात्रा को 100 लीटर पानी में घोलकर भंडारण कमरे में अच्छी तरह से छिड़काव करें। इस कमरे को कम से कम एक सप्ताह तक बंद रखने पर इसमें छिपे हुए कीट आदि मर जाते हैं।
- यदि कीटों का छिड़काव से नियंत्रण न किया जा सके और दो कीट प्रति कि.ग्रा. बीज या अनाज में उपस्थित हों तो धुंआ देने वाले विषैले रसायन से कीट मर जाते हैं।
- एल्युमिनियम फॉस्फेट की 1-3 गोली/टन की दर से विभिन्न ऊंचाई पर रख दी जाती है। छल्ली को गैस अवरोधी चादर से ढक दिया जाता है। गोलियों से हवा की नमी शोषित होती है और फॉस्फिन गैस निकलती है जो कीटों को मार देती है।
- यदि मिथाइल ब्रोमाइड का प्रयोग करना हो तो ढेर में 3-5 मिली मिथाइल ब्रोमाइड/100 कि.ग्रा. अनाज रखने के बाद बर्तन बंद कर दिया जाता है और बर्तन में गैस निकलने से कीट मर जाते हैं। इसके अलावा एथिलीन डाइब्रोमाइड (ई.डी.बी.) की 30 मि.ली. मात्रा/टन बीज की दर से ध्रूमीकरण कर सकते हैं। यदि अनाज को नीम के बीज के पाउडर के साथ मिलाकर रखा जाए, तो कीटों का प्रकोप नहीं होगा।
- गोदाम में बीज भंडारण के लिए फर्श से करीब एक फीट ऊंचा एक लकड़ी का प्लेटफार्म बनायें, जो दीवारों से भी करीब एक फीट की दूरी पर हो, बोरों को गोदाम की दीवारों से सटाकर कभी भी नहीं रखना चाहिए।
- भण्डारण प्रायः जूट के बोरों में करना चाहिए, नए बोरों का प्रयोग करें, तो ज्यादा अच्छा है। यदि पुराने बोरे का इस्तेमाल कर रहे हैं तो 3-4 दिनों तक तेज धूप में सुखाना चाहिए या गर्म पानी से धो लें या फिर 0.1 प्रतिशत मैलाथियॉन घोल में 15-20 मिनट तक डुबोकर रखें फिर उसे अच्छी तरह धूप में सुखाकर उपयोग करना चाहिए।

गेहूं

ग्रीष्मकालीन मूंग, उड़द एवं लोबिया

- **जल प्रबंधन:** अधिकतर स्थानों पर मार्च के आखिर या अप्रैल के प्रथम सप्ताह में मूंग, उड़द और लोबिया की बुआई हो चुकी होगी। इस समय फसल

उड़द

अपनी बढ़वार की अवस्था में होगी, अतः सिंचाई 10-15 दिनों के अन्तराल पर आवश्यकतानुसार एवं हल्की करें।

- **खरपतवार प्रबंधन:** बुआई के प्रारंभिक 4-5 सप्ताह तक खरपतवार की समस्या अधिक रहती है। पहली सिंचाई के बाद निराई करने से खरपतवार नष्ट होने के साथ-साथ भूमि में वायु का संचार भी होता है जो मूल ग्रन्थियों में क्रियाशील जीवाणुओं द्वारा वायुमण्डलीय नाइट्रोजन एकत्रित करने में सहायक होता है। अतः बुआई के 15-20 दिनों के अन्दर कसोले से निराई-गुड़ाई कर खरपतवारों को नष्ट कर देना चाहिए।

ग्रीष्मकालीन मूंग

रोग प्रबंधन

झुर्रीदार पत्ती (लीफ क्रिंकल)

- **लक्षण:** इस रोग के विशिष्ट लक्षण पत्तियों की सामान्य से अधिक वृद्धि तथा बाद में इनमें सिलवटें या मरोड़ होता है। ये पत्तियां छूने पर सामान्य पत्ती से अधिक मोटी तथा खुरदरी प्रतीत होती हैं।
- **नियंत्रण:** इसके नियंत्रण के लिये

कीट प्रबंधन

- उड़द, मूंग और लोबिया पर पाये जाने वाले हानिकारक कीटों की समस्या विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न होती है। यह फसल की अवस्था, तापमान, नमी, सूर्य के प्रकाश तथा वर्षा पर निर्भर करती है। इन कीटों में तना मक्खी, सफेद मक्खी, हरा फुदका (लीफ हॉपर या जैसिड), माहूं, पत्ती छेदक भृंग (गेलूरूसिड बीटिल) पर्ण जीवक (थ्रिप्स), चना फली एवं मटर फलीबेधक आदि प्रमुख हैं।

तना मक्खी

- **लक्षण:** पौधे की ऊपरी दो पत्तियां मुरझा जाती हैं, पौधे में पीलापन आ जाता है और प्रभावित भाग फूलकर सड़ने लगते हैं।
- **नियंत्रण:** तना मक्खी के नियंत्रण हेतु इण्डसिस्टोन या फोरेट से बीजोपचार करके 2-4 सप्ताह तक फसल को सुरक्षित रखा जा सकता है; बुआई के समय एल्डीकार्ब 10 जी एवं फोरेट 10 जी 1.6 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हैक्टर का प्रयोग करना अधिक लाभदायक होता है; मोनोक्रोटोफॉस 40 ई.सी. 624 मि.ली./हैक्टर या ऑक्सीडिमेटान मिथाइल 25 ई.सी. 750 मिली/हैक्टर की दर से छिड़काव 15 दिनों के अन्तराल पर करना चाहिए।

सफेद मक्खी

- **लक्षण:** यह कीट पौधों की कोशिकाओं का रस चूसकर आहार प्राप्त करता है। इसके कारण पौधों की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और पीला शिरा मोजैक वायरस का भी संवाहक है।
- **नियंत्रण:** इसके नियंत्रण के लिये ऑक्सीडिमेटान मिथाइल 0.1 प्रतिशत या डाइमेथोएट 0.3 प्रतिशत 650-700 लीटर पानी में मिलाकर/हैक्टर 3-4 छिड़काव करना चाहिए या इमिडाक्लोरोप्रिड 0.5 मिली/लीटर पानी (500 लीटर/हैक्टर) की दर से छिड़काव बुआई के 10-15 दिनों बाद अवश्य करें।

जैसिड

- **लक्षण:** फसल में जैसिड के नुकसानदेह लक्षण पत्तियों पर पीले धब्बे, मरोड़पन और झुर्रियों के रूप में दिखाई देते हैं। इसके कारण पौधे का विकास रुक जाता है और फलियां कम बनती हैं।
- **नियंत्रण:** जैसिड के नियंत्रण के लिए मोनोक्रोटोफॉस, फिनिट्रोथियॉन, क्लोरफेनविनफॉस, का क्रमशः 0.075 प्रतिशत, 0.05 प्रतिशत एवं 0.03 प्रतिशत या इमिडाक्लोरोपिड 0.5 मिली/लीटर पानी (500 लीटर/हैक्टर) की दर से बुआई के 10-15 दिनों बाद छिड़काव लाभदायक पाया गया है। इसके साथ ही बुआई के समय में भी परिवर्तन करके नियंत्रण किया जा सकता है।

माहूं

- **लक्षण:** माहूं के नुकसान के लक्षण पत्तियों पर पीले या हरे धब्बे और सिकुड़न, तनों पर चिपचिपा पदार्थ एवं पौधे की वृद्धि में कमी के रूप में दिखाई देते हैं। ये पौधों का रस चूसकर उन्हें कमजोर बना देते हैं और वायरस भी फैला सकते हैं, जिससे नुकसान अधिक हो सकता है।
- **नियंत्रण:** माहूं के नियंत्रण हेतु फेनवलेरेट, साइपरमेथ्रिन एवं डेकामिथ्रिन आदि काफी प्रभावी पाया गया है। बुआई के समय डाइसल्फोटोन ग्रेन्यूल 1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हैक्टर के प्रयोग करने से लगभग पांच सप्ताह तक माहूं का नियंत्रण आसानी से हो जाता है।

रोगरोधी प्रजातियां ही उगाएं; रोगी पौधों को उखाड़कर जला दें; अधिक प्रकोप होने पर डाईमिथोएट 30 ई.सी. का छिड़काव करने से लाभ होता है।

एंथ्रेक्नोज

- **लक्षण:** इस रोग से ग्रसित पौधों की पत्तियों तथा फलियों पर भूरे गोल धसे हुए धब्बे दिखाई देते हैं। इन धब्बों का केन्द्र गहरे रंग का और बाहरी सतह चमकीली लाल रंग की होती है। संक्रमण बढ़ने पर पौधे के रोग ग्रसित भाग जल्दी सूख जाते हैं।
- **नियंत्रण:** इस रोग के नियंत्रण के लिये बुआई से पहले बीज को थीरम कवकनाशी या कैप्टॉन 2-3 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए; इंडोफिल जेड-78 या थीरम कवकनाशी 2 ग्राम/लीटर पानी की दर से घोल बनाकर रोग के लक्षण दिखाई देने पर छिड़काव करें तथा आवश्यकतानुसार 1 से 2 छिड़काव 15 दिनों के अन्तराल पर करना चाहिए।

पीली चितेरी (येलो मोजैक)

- **लक्षण:** उड़द एवं मूंग में प्राय: पीली चितेरी रोग का प्रकोप होता है, जो श्वेत मक्खी *(बेमीसिया तबाकी)* द्वारा संवाहित होता है।
- सर्वप्रथम कोमल पत्तियों पर पीले तथा हरे धब्बे दिखाई देते हैं, जैसे-जैसे रोग की अवस्था बढ़ती है, पीले क्षेत्र का आकार भी बढ़ता जाता है तथा अन्त में सभी फलियां भी पीली हो जाती हैं। इनका आकार छोटा हो जाता है एवं साथ ही दानों का आकार भी छोटा हो जाता है।
- **नियंत्रण:** इस रोग के नियंत्रण के लिये मूंग की रोगरोधी प्रजातियां जैसे-पूसा 1371, पूसा 1431, पूसा विशाल, पूसा 0672, पूसा 9531, सम्राट, मेहा तथा उड़द की रोगरोधी प्रजातियां जैसे-के.यू. 300, यू.जी. 218, आई.पी.यू.-94-1, पन्त उड़द-19 एवं नरेन्द्र उड़द-1 इत्यादि उगानी चाहिए। बुआई के समय कीटनाशी डाइसल्फोऑन या फोरेट 1 कि.ग्रा. सक्रिय अवयव/हैक्टर की दर से भूमि में प्रयोग करना चाहिए। इससे अन्य कीटों से भी फसल की सुरक्षा हो जाती है।

उड़द का पत्ती दाग रोग

- **लक्षण:** इस रोग में पत्तियों पर गोलाई लिए भूरे रंग के कोणीय धब्बे बनते हैं। इसके बीच का भाग राख या हल्का भूरा तथा किनारा लाल बैंगनी रंग का होता है।
- **नियंत्रण:** इसके नियंत्रण के लिये 3 कि.ग्रा. कॉपर ऑक्सीक्लोराइड प्रति हैक्टर 10 दिनों के अन्तराल पर 2 से 3 छिड़काव या कार्बेण्डाजिम 500 ग्राम का एक छिड़काव र्प्याप्त होता है; गर्मी में गहरी जुताई करें एवं रोगरोधी प्रजातियों को उगायें; बीज शोघन एवं बीजोपचार किसान अवश्य करें।

उड़द का पीला चित्तीवर्ण

- **लक्षण:** यह रोग सफेद मक्खी द्वारा फैलता है। पत्तियों पर पीले सुनहरे धब्बे पड़ जाते हैं। रोग की उग्र अवस्था में सम्पूर्ण पत्ती पीली पड़ जाती है।
- **नियंत्रण:** इसके नियंत्रण के लिये डाइमिथोएट (30 ई.सी.) एक लीटर प्रति हैक्टर का छिड़काव करना चाहिए या मिथाइल-ओडिमेटॉन (25 ई.सी.) 1.0 लीटर प्रति हैक्टर का छिड़काव करना चाहिए।

लोबिया मोजैक

- **लक्षण:** यह रोग सफेद मक्खी द्वारा संचारित होती है, इससे पत्तियों का आकार विकृत हो जाता है।
- **नियंत्रण:** इसके नियंत्रण के लिये 0.1 प्रतिशत मेटासिस्टॉक्स या डाइमेथोएट का छिड़काव 10 दिनों के अन्तराल पर करें।

कटाई एवं मड़ाई

- जब 80 प्रतिशत से अधिक फलियां पक जायें, जो हंसिए की सहायता से कटाई कर लेनी चाहिए। देर से कटाई करने पर फलियों से दाने चटकने की आशंका रहती है।
- उड़द एवं मूंग की नई प्रजातियां ज्यादातर एक साथ पक जाती हैं। इससे सम्पूर्ण फसल की कटाई एक साथ की जा सकती है। कटाई उपरान्त फसल को 3-6 दिनों तक अच्छी तरह सुखाकर मड़ाई करनी चाहिए। बीजों को तब तक धूप में सुखाना चाहिए, जब तक उसमें नमी 10-12 प्रतिशत के बीच न हो।
- लोबिया की नरम एवं कच्ची फलियों की तुड़ाई नियमित रूप से 4-5 दिनों के अंतराल में करें। झाड़ीदार प्रजातियों में 3-4 तुड़ाई तथा बेलदार प्रजातियों में 8-10 तुड़ाई की जा सकती है।

सर्कोस्पोरा पर्ण बुदंगी

- **लक्षण:** पत्तियों पर स्लेटी से भूरे कोणीय धब्बे पड़ जाते हैं। इन धब्बों के चारों तरफ लाल रंग की किनारी बन जाती है, ये इस रोग के विशिष्ट लक्षण हैं। गम्भीर अवस्था में फलियां बनते समय संक्रमित पत्तियां सड़ जाती हैं।
- **नियंत्रण:** इस रोग के नियंत्रण के लिये बुआई से पहले बीज का कैप्टॉन या थीरम कवकनाशी से 2-3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचार करना चाहिए। या कार्बेण्डाजिम (0.05 प्रतिशत) या मैंकोजेब 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।

ग्रीष्मकालीन गन्ना

- **बुआई:** मई में ग्रीष्मकालीन गन्ने की

गन्ना

बुआई की जाती है, हालांकि इसकी पैदावार शरद एवं बसंतकालीन गन्ने से कम होती है। विभिन्न गन्ने की फसलों की उपयुक्तता इससे पहले ली जाने वाली फसल पर निर्भर करती है। यदि ग्रीष्मकालीन गन्ने की पैदावार बढ़ानी है, तो उपयुक्त किस्म तथा संतुलित पोषण अनिवार्य है।

- बुआई से पूर्व गन्ने के टुकड़ों को 24 घंटे पानी में भिगोकर रखने से अंकुरण अच्छा होता है। इस समय बुआई के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 सें.मी. लें। गन्ने में बुआई के लगभग 3 माह बाद 60-75 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (130-163 कि.ग्रा. यूरिया) प्रति हैक्टर की टॉप ड्रेसिंग करें। यदि गन्ना काटने के बाद गन्ने की बुआई करनी हो, तो पलेवा करके बोयें।
- **किस्मों का चयन:** गन्ना की सी.ओ.एच.-37 प्रजाति मई के पहले सप्ताह तक लगा सकते हैं। यह किस्म तेजी से बढ़ने वाली है, इसका गन्ना मोटा, नरम एवं रसीला होता है। यह कमजोर मिट्टी पर तथा सिफारिश की गई नाइट्रोजन की आधी मात्रा से 320 क्विंटल पैदावार तथा 18-20 प्रतिशत खांड देता है।
- अधिक बढ़ने पर गन्ना गिर जाता है इसलिए इसे द्वि-पंक्ति विधि से बोना, मिट्टी चढ़ाना एवं बांधना बहुत आवश्यक है। सी.ओ.-1148 एवं सी.ओ.एस.-767 प्रजातियां सूखा सहनशील हैं।
- **मिट्टी चढ़ाना:** यदि पौधे थोड़े बड़े हो गये हों, तो मई में गन्ने पर हल्की मिट्टी चढ़ा दें। इससे खरपतवार का नियंत्रण तो होता ही है, फसल भी गिरने से बच जाती है।
- **जल प्रबंधन:** इस समय गन्ने की फसल पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। खासतौर से सिंचाई प्रबंधन पर। इस महीने में बहुत गर्मी पड़ने के साथ तेज हवाएं भी चलती हैं।
- गन्ने की फसल को पूर्ण जीवनकाल के लिए 60 से 70 इंच पानी की आवश्यकता होती है। इसमें आधा पानी वर्षा से प्राप्त हो जाता है।
- मृदा में पर्याप्त नमी बनाए रखने के लिये प्रत्येक 15-20 दिनों के अंतराल पर पानी देना चाहिए। बुआई के 6 सप्ताह बाद पहली सिंचाई दें तथा शदरकालीन, बसंतकालीन एवं मोढ़ी फसल को मई में 10 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करें। सी.ओ.जे.-64 किस्म को अधिक सिंचाई की जरूरत होती है।
- पानी की कमी होने पर पत्तियों को

ग्रीष्मकालीन मूंगफली

- सिंचित क्षेत्रों में जायद मूंगफली की बुआई मई के पहले सप्ताह तक कर सकते हैं, इसके लिए मूंगफली-गेहूं फसलचक्र अपनाया जा सकता है परन्तु एक ही भूमि पर प्रत्येक वर्ष मूंगफली न उगायें। इससे भूमि से कई रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जायद मूंगफली की उन्नत किस्में एम 522, एम 335, एचबी 84 सिंचित क्षेत्रों में तथा एम 37 बारानी क्षेत्रों में जहां वर्षा अच्छी हो, वहां लगाई जा सकती है।

- **खरपतवार प्रबंधन:** मूंगफली की फसल में खरपतवारों द्वारा लगभग 40-45 प्रतिशत तक उपज में कमी आ जाती है। मूंगफली की फसल शुरुआती 30-35 दिनों की अवस्था में खरपतवारों के प्रति संवेदनशील होती है। खरपतवार निकालने के लिए 3 सप्ताह बाद निराई-गुड़ाई करना लाभदायक रहता है। इसमें पहली निराई-गुड़ाई बुआई के 20-25 दिनों बाद एवं दूसरी बुआई के 35-40 दिनों बाद करनी चाहिए। मूंगफली की फसल में खरपतवार नियंत्रण के लिये फ्लूक्लोरालिन (बासालिन) या ट्रेफ्लॉन की 0.75-1.0 कि.ग्रा./हैक्टर सक्रिय तत्व की मात्रा बुआई से पहले मृदा में मिला दें। बुआई से पहले खरपतवारनाशी का प्रयोग नहीं किया गया हो, तो बुआई से 1-3 दिनों के अन्दर लासो की 1.5-2.0 कि.ग्रा./हैक्टर या पेन्डीमेथिलीन की 1.0-1.25 कि.ग्रा./हैक्टर सक्रिय तत्व की मात्रा को छिड़काव द्वारा अच्छी तरह मिट्टी में मिलाएं। खड़ी फसल में चौड़ी पत्ती एवं घास वाले खरपतवारों के नियंत्रण के लिए इमेजेथापायर (10 प्रतिशत एसएल) की 75-100 ग्राम/हैक्टर सक्रिय तत्व की मात्रा का बुआई के 20-25 दिनों पर छिड़काव अवश्य करें।
- **जल प्रबंधन:** अच्छी उपज लेने के लिए ग्रीष्मकालीन मूंगफली में 4-5 सिचाइयां देनी चाहिये। ग्रीष्मकालीन मूंगफली की प्रजातियों में 30-35 दिनों के बाद फूल आने प्रारम्भ हो जाते हैं। इसलिए दूसरी सिंचाई 35 दिनों की फसल होने पर करें। 45-50 दिनों के बाद खूंटी बनने लगती है। अतः इस अवस्था में नमी की उचित व्यवस्था हेतु 50-55 दिनों बाद तीसरी सिंचाई करें। इसे गहरी करना उचित होगा क्योंकि इस समय खूंटी भूमि में गढ़ने लगती है तथा फलियां बनने लगती हैं। चौथी सिंचाई 70-75 दिनों के बाद फलियों में दाना भरते समय करनी चाहिये।
- **पौध संरक्षण:** ग्रीष्मकालीन मूंगफली में दीमक एवं फलीबेधक का प्रकोप होने पर क्लोरपायरीफॉस 20 प्रतिशत ई.सी. की 2.5 लीटर मात्रा प्रति हैक्टर की दर से सिंचाई के साथ प्रयोग करें। कार्बोफ्यूरॉन 3 जी 20 कि.ग्रा. अथवा फोरेट 10 जी 10 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर सूत्रकृमि के नियंत्रण के लिए प्रयोग करें।

पंक्तियों के बीच में 7-8 सें.मी. मोटी परत बिछा देनी चाहिये। ऐसा करने से खेत में सिंचाई के बाद नमी बनी रहेगी, खरपतवार भी कम उगेंगे, गन्ने की पताई धीरे-धीरे सड़ती रहती हैं तथा कम्पोस्ट खाद का काम करती है।

- **कीट नियंत्रण:** गन्ने को अंकुरबेधक एवं दीमक से बचाने के लिए कूड़ को ढकने से पहले बी.एच.सी. 20 ई.सी. दवा की 6 लीटर मात्रा को 1 लीटर पानी में घोलकर बोये गये टुकड़ों के ऊपर छिड़काव करें।
- गन्ने की फसल में कीट नियंत्रण एवं प्रबंधन के लिए बुआई के समय एक एकड़ भूमि में 2 लीटर क्लोरोपायरीफॉस को 400 लीटर पानी में घोलकर बुआई की गयी पंक्तियों में डाल दें। अगोलाबेधक कीट की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफॉस 40 ई.सी. की 1.5 लीटर या 30 कि.ग्रा. कार्बोफ्यूरॉन प्रति हैक्टर दवा 600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- अप्रैल से जुलाई के बीच 400 लीटर पानी में रैनेक्सीपैर 20 एस.सी. की 150 मिली मात्रा घोलकर छिड़काव करें अथवा जून के अंत में 13 कि.ग्रा. कार्बोफ्यूरॉन को प्रति एकड़ भूमि में डालें।
- **रोग प्रबंधन:** गन्ने की फसल को रोग से बचाने के लिए रोगरोधी प्रजातियों की बुआई करें। स्वस्थ बीज एवं समन्वित रोग प्रबंधन द्वारा रोगों से बचाव संभव है तथा अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। रोगग्रस्त गन्ने के पौधों को खेत से निकालकर 0.1 प्रतिशत कार्बेण्डाजिम का छिड़काव करें।
- **पेड़ी प्रबंधन:** फसल की कटाई के बाद सभी मुंड से पेड़ी का फुटाव नहीं होता, जिसके कारण खेत में जगह-जगह रिक्त स्थान बन जाते हैं। इन रिक्त स्थानों को भरने के लिए पहले से तैयार नर्सरी से पौधे उखाड़कर लगा देने चाहिए या फिर दो-आंखों वाले टुकड़ों से रिक्त स्थानों की पूर्ति कर दें। इससे खेत में पौधों की संख्या सुनिश्चित रहेगी और अधिक पैदावार मिलेगी।
- गन्ने की पेड़ी से अच्छी उपज लेने के लिए 75 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (163 कि.ग्रा. यूरिया) प्रति हैक्टर पहली फसल काटने के बाद एवं इतनी ही यूरिया की मात्रा दूसरी एवं तीसरी सिंचाई के समय या फसल काटने के 60 दिनों बाद एवं साथ ही 75 कि.ग्रा. पोटाश का प्रयोग आवश्यक है। सुविधानुसार 15 से 20 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करने से पेड़ी फसल की अच्छी पैदावार होती है।
- यदि कुछ कीटों का प्रकोप दिखे तो फोरेट 10 जी की 30 कि.ग्रा. मात्रा का प्रयोग करना चाहिए। पेड़ी फसल में काला चिकटा (ब्लैक बग) तथा गुलाबी चिकटा कीट का प्रकोप अप्रैल से मई में होता है। ये गन्ने की पत्तियों का रस चूस जाते हैं, जिससे पत्तियां पीले रंग की हो जाती हैं, पौधे धीरे-धीरे

ग्रीष्मकालीन सूरजमुखी

- **जल प्रबंधन:** सूरजमुखी की फसल में आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें। जायद में बोयी गई सूरजमुखी की फसल में तीन सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। पहली बुआई के 30-35 दिनों बाद करें एवं इसी अवस्था में नाइट्रोजन की 1/3 मात्रा का उपयोग करें, द्वितीय सिंचाई 40-45 दिनों बाद फूल आने की अवस्था में करें एवं अंतिम सिंचाई बीज बनने की अवस्था में करें। फूल आने के समय मधुमक्खियां प्राकृतिक रूप से बहुत सक्रिय होती हैं एवं परागण में बहुत सहायक होती हैं। इससे पूरे हेड में दाना भरता है एवं पैदावार में वृद्धि तथा बीजों से अधिक तेल प्राप्त होता है।

- **खरपतवार प्रबंधन:** सूरजमुखी की फसल में निराई-गुड़ाई करना बहुत महत्वपूर्ण है, खासकर बुआई के 20-25 दिनों बाद पहली सिंचाई के बाद। खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए पेंडीमेथिलीन 3 प्रतिशत ईसी का छिड़काव किया जा सकता है। इसके अलावा, बुआई के 3 और 6 सप्ताह बाद दो बार निराई-गुड़ाई करें। साथ ही पौधों पर मिट्टी चढ़ाने का कार्य भी सुनिश्चित करें।
- **कीट नियंत्रण:** जायद में बोई गई सूरजमुखी की फसल में पत्ती खाने वाले कीट (लीफ हॉपर) के लिए मोनोक्रोटोफॉस 0.05 प्रतिशत या डाइमेथोएट 0.03 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए। रस-चूसक कीट, एफिड्स एवं जैसिड की रोकथाम के लिए इमिडाक्लोरोपिड 125 ग्रा/हैक्टर या एसिटामिप्रिड 125 ग्रा/हैक्टर की दर से छिड़काव करें। चेंपा जो कि पौधों से रस चूसते हैं का प्रकोप हो तो उसके नियंत्रण के लिए 200 मिली. मैलाथियॉन 50 ई.सी. को 200 लीटर पानी में मिलाकर फसल पर छिड़काव करें।
- **रोग प्रबंधन:** सूरजमुखी की फसल में रतुआ, डाऊनी मिल्ड्यू, हेड रॉट, राइजोपस हेड रॉट जैसी रोगों की समस्याएं आती हैं। पत्ती झुलसा रोग के नियंत्रण हेतु मैंकोजेब 3 ग्राम/लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। पुष्पण की अवस्था पर 2 प्रतिशत बोरेक्स और 1 प्रतिशत जिंक सल्फेट के छिड़काव से दाने भरे हुए, मोटे और तेल उपज में वृद्धि होती है। रोगों से रोकथाम के लिए फफूंदीनाशक दवा जैसे बाविस्टिन या थीरम नामक दवा से बीजोपचार ही सबसे सर्वोत्तम तरीका है।

धान की नर्सरी

- **भूमि का चयनः** स्वस्थ एवं रोगमुक्त पौध तैयार करने के लिए उचित जल-निकास एवं उच्च पोषक तत्वों युक्त दोमट मृदा, सिंचाई के स्रोत के पास पौधशाला का चयन करें। बुआई के एक महीने पहले नर्सरी तैयारी की जाती है। नर्सरी क्षेत्र में 15 दिनों के अन्तराल पर पानी देकर खरपतवारों को उगने दिया जाए तथा हल चलाकर अथवा अवरणात्मक (नान सेलेक्टिव) खरपतवारनाशी जैसे कि पैराक्वाट या ग्लाईफोसेट का 1 कि.ग्रा./हैक्टर छिड़काव करके खरपतवारों को नष्ट कर दें। ऐसा करने से धान की मुख्य फसल में भी खरपतवारों की कमी आयेगी। नर्सरी क्षेत्र को गर्मियों (मई-जून) में अच्छी तरह 3-4 बार हल से जुताई करके खेत को खाली छोड़ने से मृदा संबंधित रोगों में काफी कमी आती है।

- **बीज चयनः** बीज का चयन सावधानी पूर्वक करें। इसके लिए आधारित एवं प्रमाणित बीजों का ही प्रयोग करें जिसमें पूर्ण जमाव, किस्म की शुद्धता एवं स्वस्थ होने की प्रमाणिकता होती है।
- **क्यारी प्रबंधनः** धान की पौध तैयार करने के लिए 8 मीटर लम्बी एवं 1.5 मीटर चौड़ी क्यारियां बना लेते हैं। जब तक नवपौध हरी न हो जाए, पक्षियों से होने वाले नुकसान से बचाने के लिए विशेष सावधानी बरती जाए तथा शुरू के 2-3 दिनों अंकुरित बीजों को पुआल से ढके रहें।
- **बीजदर एवं बीजोपचारः** धान की नर्सरी के लिए मध्यम आकार की प्रजातियों के लिए 40 कि.ग्रा., मोटे धान के लिए 45 कि.ग्रा. तथा बासमती प्रजातियों के लिए 20-25 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त होता है। धान के बीज को बोने से पूर्व 4 ग्राम ट्राइकोडर्मा या 2.5 ग्राम कार्बेण्डाजिम या थीरम से बीजोपचार कर लेना चाहिए।
- जहां पर जीवाणु झुलसा या जीवाणुधारी रोग की समस्या हो वहां पर 25 कि.ग्रा. बीज के लिए 4 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन या 40 ग्राम प्लान्टोमाइसीन को मिलाकर पानी में रातभर भिगो दें तथा 24-36 घंटे तक जमाव होने दें, बीच-बीच में पानी का छिड़काव करते रहें तथा दूसरे दिन छाया में सुखाकर नर्सरी डाल दें।
- **पोषक तत्व प्रबंधनः** अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए संतुलित पोषक तत्वों के उपयोग से नवपौध की अच्छी बढ़वार, स्वस्थ एवं ओजपूर्ण/पर्याप्त पोषण मिलना जरूरी है। इसके 1000 वर्गमीटर क्षेत्र के लिए 10 क्विंटल सड़ी हुई गोबर की खाद, 10 कि.ग्रा. डाई-अमोनियम फॉस्फेट तथा 2.5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट जुताई से पहले मिट्टी में अच्छी तरह मिलाने के बाद में बुआई करें। इसके 10-12 दिनों बाद यदि पौधों का रंग हल्का पीला हो जाए तो एक सप्ताह के अन्तराल पर दो बार 10 कि.ग्रा. यूरिया/1000 वर्ग मीटर की दर से मिट्टी की ऊपरी सतह पर मिला दें जिससे पौध की बढ़वार अच्छी होगी।
- **खपतवार प्रबंधनः** बुआई के 1-2 दिनों बाद पायराजोसल्फ्यूरॉन 250 ग्राम प्रति हैक्टर की दर से पौध निकलने के पूर्व छिड़काव करें। इसके लिए शाकनाशी को रेत में (10-15 कि.ग्रा.0/1000 मी^{2}) मिलाकर उसे नर्सरी क्यारियों पर एक समान रूप से फैला दें तथा हल्का पानी (1-2 सें.मी.) क्यारियों में भरा रहने दें, जिससे खरपतवारनाशी एक समान क्यारियों में फैल जायें।

मुरझाने लगते हैं। इसके नियंत्रण के लिए रॉकेट (प्रोफोनोफोससाइपर) 400 मिली प्रति एकड़ 200 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिये।

कपास

- यह एक महत्वपूर्ण नकदी फसल है। व्यावसायिक जगत में यह 'श्वेत स्वर्ण' के नाम से जानी जाती है।
- **जलवायुः** कपास के उत्तम जमाव हेतु न्यूनतम 16 डिग्री फसल बढ़वार के समय 21-27 डिग्री एवं उपयुक्त फलन हेतु दिनों में 27-32 डिग्री सेल्सियस तापमान तथा रात्रि में ठंडक का होना आवश्यक है। गूलरों के फटने हेतु चमकीली धूप एवं पालारहित ऋतु आवश्यक है। कपास के लिए कम से कम 50 सें.मी. वर्षा का होना भी आवश्यक है।
- **मृदाः** कपास के लिए उपयुक्त मृदा में अच्छी जलधारण एवं जल निकास की क्षमता होनी चाहिए। जहां सिंचाई की सुविधाएं उपलब्ध हों वहां बलुई और बलुई दोमट मृदा में इसकी खेती की जा सकती है। इसके लिए उपयुक्त पी एच मान 5.5-6.0 है पर इसकी खेती 8.5 पी एच मान तक वाली मृदा में भी की जा सकती है।
- **फसल पद्धतिः** सिंचित क्षेत्रों के लिए फसलचक्र जैसे कपास-सूरजमुखी, कपास-मूंगफली, कपास-बरसीम/जई, कपास-गेहूं/जौ एवं उत्तर भारत में कपास-मटर, कपास-ज्वार और कपास-गेहूं हैं।
- दक्षिणी भारत में कपास-ज्वार, कपास-मूंगफली, धान-कपास और कपास-धान फसलचक्र मुख्य हैं। उत्तरी भारत में कपास के बाद गेहूं की फसल लेने के लिए कपास की जल्दी पकने वाली प्रजाति और गेहूं की देर से बोने वाली प्रजाति बोनी चाहिए।
- **प्रजातियांः** विभिन्न क्षेत्रों के लिए अमेरिकन कपास *(गोसीपियम हिर्सुटम)* की उन्नत प्रजातियां जैसे-एफ. 286, एल.एस. 886, एफ. 414 एवं संकर कपास की उन्नत प्रजातियां जैसे-फतेह, एल.डी.एच. 11, एल.एच. 144, धनलक्ष्मी, एच.एच.एच. 223, सी. एस.ए.ए. 2।
- देसी कपास *(गोसीपियम आर्बोरियम)*

की उन्नत प्रजातियां जैसे-एच. 777, एच.डी. 1, एच. 974, एच.डी. 107, डी.एस. 5, के. 10 एवं के. 11 आदि भारत के सभी क्षेत्रों में उगाई जाती हैं।

- **बुआई:** अमेरिकी प्रजातियों की बुआई देसी प्रजातियों से कुछ पहले की जाती है। पंजाब, हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश में इसकी बुआई आमतौर पर गेहूं की कटाई के बाद अप्रैल-मई में की जाती है। अप्रैल-मई में बुआई करना अधिक लाभकर रहता है।
- कपास की बुआई के लिए बीज को पंक्तियों में बोना सदैव अच्छा रहता है। पंक्तियों में बुआई के लिए सीड ड्रिल या देसी हल के पीछे कूड़ में बीज बोए जाते हैं।
- अमेरिकन, संकर और देसी कपास की क्रमशः 15-20, 2-2.5 और 15-16 कि.ग्रा./हैक्टर बीज पर्याप्त होता है। अमेरिकन अथवा देसी कपास के लिए 60×30 सें.मी. तथा संकर प्रजातियों के लिए 90×60 सें.मी. पंक्ति से पंक्ति और पौधे से पौधे की दूरी रखनी चाहिए।
- **बीज उपचार:** बीज सुखाने के बाद कार्बेण्डाजिम फफूंदनाशक द्वारा 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से बीज शोधन करना चाहिए। फफूंदनाशक दवा के उपचार से राइजोक्टोनिया जड़ गलन, फ्यूजेरियम उकठा और अन्य मृदाजनित फफूंद से होने वाली व्याधियों को बचाया जा सकता है।
- कार्बेण्डाजिम सिस्टेमिक (अन्तप्रवाही) रसायन है। इससे फसल को प्राथमिक अवस्था में रोगों के आक्रमण से बचाया

पोषक तत्व प्रबंधन

उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण की संस्तुतियों के आधार पर किया जाना चाहिए। कपास की देसी प्रजातियों के लिये 50-70 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 20-30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, अमेरिकन एवं देसी प्रजातियों के लिये 60-80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 20-30 कि.ग्रा. पोटाश और संकर प्रजातियों के लिये 150-60-60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर का प्रयोग लाभदायक पाया गया है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा एवं शेष उर्वरकों की पूरी मात्रा बुआई के समय डालनी चाहिए तथा नाइट्रोजन की शेष मात्रा फूल आने के समय सिंचाई के बाद में देनी चाहिए।

चारा फसलें

- बरसीम, जई एवं लोबिया की बीज वाली फसलों की कटाई का कार्य करें एवं 10-12 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करते रहें। मई में हरे चारे के लिए बाजरा, ज्वार एवं मक्का फसल की बुआई कर सकते हैं। इसकी बुआई मार्च के अंत या अप्रैल तक कर दी जाती है। सिंचाई का विशेष ध्यान रखें। प्रत्येक कटाई के बाद सिंचाई अवश्य करें और नाइट्रोजन की मात्रा को भी ठीक प्रकार से प्रयोग करें।

- **किस्मों का चयन:** मई में सिंचित अवस्था में चारे के लिए बाजरा (किस्म-पीसीबी 141), मकचरी (किस्म-टीएल-1), नेपियर-बाजरा संकर (पीवीएन-233 एवं 83, संकर-21), ज्वार (किस्में-जे.एम. 20, एच.सी. 136, एच.सी. 171, एच.सी. 260, एच.सी. 308, एस.एल. 44 एवं पंजाब सूडेक्स चरी-1), मक्का (किस्में-जे. 1006, प्रभात, प्रताप, केसरी एवं मेघा), गिनी घास (पी.जी.जी. 518 एवं 101), ग्वार (एफ.एस. 277 एवं ग्वार-80), लोबिया (लोबिया-88 एवं लोबिया 90) यह सिफारिश की जाती है कि चारा फसलें मिलाकर बोने में चारा पौष्टिक बनता है तथा पैदावार भी अधिक तथा ज्यादा कटाइयां मिलती हैं।
- **पोषक तत्व प्रबंधन:** मिश्रित चारे में सही मात्रा में बीज लेकर रोगों के लिए उपचारित कर लें फिर खेत में 2-3 बार जुताई करके 10 टन देसी गोबर खाद तथा 1 बोरा यूरिया डालकर बीज छिड़ककर बो दें। ज्वार की एक कटाई वाली प्रजातियों में नाइट्रोजन की आधी मात्रा को पहली सिंचाई के बाद खेत में प्रयोग करतें है। बहुकटाई वाली चरी में 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन या 65 कि.ग्रा. यूरिया तथा मक्का में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन या 87 कि.ग्रा. यूरिया बुआई के 30 दिनों बाद टॉप ड्रेसिंग करें। प्रत्येक कटाई के बाद शेष नाइट्रोजन को बराबर मात्रा में उपयोग करने पर हरे चारे की अच्छी बढ़वार होती है।
- **कटाई:** अच्छी बढ़वार होने पर आवश्यकतानुसार चारे की कटाइयां लेते रहें तथा कटाई के बाद आधा बोरा यूरिया छिड़क दें।

कपास

जा सकता है। इमिडाक्लोरोप्रिड 7.0 ग्राम अथवा कार्बोसल्फॉन 20 ग्राम प्रति कि.ग्रा. ग्राम बीज उपचारित कर बोने से फसल को 40-60 दिनों तक रस चूसक कीटों से सुरक्षा मिलती है।

- दीमक से बचाव के लिए 10 मिली पानी में 10 मिली क्लोरोपाईरीफॉस मिलाकर बीज पर छिड़क दें तथा 30-40 मिनट छाया में सुखाकर बुआई कर दें।
- **जल प्रबंधन:** सिंचाई की सुविधा हो, तो कपास की बुआई 15-25 मई के बीच कर दें। इससे सही समय पर फसल तैयार हो जायेगी। बारानी क्षेत्र में मानसून के साथ ही बुआई करना उचित होगा। कपास में 3-4 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। मृदा की नमी के अनुसार सिंचाई करें एवं अन्तिम सिंचाई एक तिहाई टिण्डे खुलने पर करें।
- **खरपतवार प्रबंधन:** कपास की अच्छी उपज लेने हेतु पूरी तरह खरपतवार नियंत्रण होना अति आवश्यक है। इसके लिए तीन-चार बार फसल बढ़वार के समय गुड़ाई बैल-चालित त्रिफाली कल्टीवेटर या ट्रैक्टर-चालित कल्टीवेटर द्वारा करनी चाहिए।
- पहली गुड़ाई सूखी हो जिसे पहली सिंचाई के पूर्व (बुआई के 30-35 दिनों पहले) ही कर लेना चाहिए। फूल एवं गूलर बनने पर कल्टीवेटर का प्रयोग न करें। इन अवस्थाओं में खुर्पी द्वारा खरपतवार निकाल देना चाहिए। 3.3 कि.ग्रा. पेण्डीमेथिलीन प्रति हैक्टर जमाव से पूर्व या बुआई के 2-3 दिनों के अन्दर प्रयोग करें।

हरी खाद वाली फसलें

- दलहनी एवं गैर दलहनी फसलों को उनके वानस्पतिक वृद्धि काल में उपयुक्त समय पर मृदा उर्वरता एवं उत्पादकता बढ़ाने के लिए जुताई करके मिट्टी में अपघटन के लिए दबाना ही हरी खाद देना है। भारतीय कृषि में दलहनी फसलों का महत्व सदैव रहा है।
- दलहनी फसलों की जड़ों में उपस्थित सहजीवी जीवाणु ग्रंथियों वातावरण में मुक्त नाइट्रोजन को यौगिकीकरण द्वारा पौधों को उपलब्ध करवाती है। आश्रित पौधे के उपयोग के बाद जो नाइट्रोजन मिट्टी में शेष रह जाती है उसे आगामी फसल द्वारा उपयोग में लाया जाता है।

ढैंचा

- दलहनी फसलें अपने विशेष गुणों जैसे भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ाने प्रोटीन की प्रचुर मात्रा के कारण पोषकीय चारा उपलब्ध करवाने तथा मृदा क्षरण के अवरोधक के रूप में विशेष स्थान रखती है।
- हरी खाद के साथ-साथ फसलों को अन्य उपयोग में भी लाया जा सके। इसके के लिए ढैंचा या सनई की बुआई भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए बहुत ही आवश्यक है। इन फसलों से 50-60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्राप्त होती है।
- हरी खाद के लिए दलहनी फसलों में ढैंचा, सनई, मूंग, उड़द, अरहर, चना, मसूर, मटर, लोबिया, मोठ, खेसारी तथा कुल्थी मुख्य हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश में जायद में हरी खाद के रूप में अधिकतर ढैंचा, सनई, उड़द एवं मूंग का प्रयोग ही प्रायः प्रचलित है।
- हरी खाद के लिए उगाई जाने वाली फसलों का चयन भूमि जलवायु तथा उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए। हरी खाद के लिए फसलों में निम्न वांछनीय गुण इस प्रकार हैं:
- हरी खाद के लिए ऐसी फसल होनी चाहिए जिससे तना, शाखाएं और पत्तियां कोमल एवं अधिक हों, ताकि मिट्टी में शीघ्र अपघटन होकर अधिक से अधिक जीवांश तथा नाइट्रोजन मिल सके और फसल शीघ्र वृद्धि करने वाली हो। फसल सूखा अवरोधी के साथ जल मग्नता को भी सहन करती हों।
- फसलें मूसला जड़ों वाली हों ताकि गहराई से पोषक तत्वों का अवशोषण हो सके। क्षारीय एवं लवणीय मृदा में गहरी जड़ों वाली फसल अंतः जल निकास बढ़ाने में आवश्यक होती है।
- रोग एवं कीट कम लगते हों तथा बीज उत्पादन क्षमता अधिक हो।
- ढैंचा या सनई की बुआई करने के

सारणी: विभिन्न हरी खाद वाली फसलों की उत्पादन क्षमता

फसल का नाम	प्राप्त नाइट्रोजन (कि.ग्रा. प्रति हैक्टर)	नाइट्रोजन का प्रतिशत	हरे पदार्थ की मात्रा (टन प्रति हैक्टर)
ढैंचा	84-105	0.42	20-25
लोबिया	74-88	0.49	15-18
मूंग	38-48	0.48	8-10
उड़द	41-49	0.41	10-12
सनई	86-129	0.43	20-30
ग्वार	68-85	0.34	20-25
कुल्थी	26-33	0.33	8-10

लिए 60 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर बीज की आवश्यकता होती है। बुआई से पूर्व बीज को 12 घंटे पानी में भिगोने के बाद बीज अंकुरण जल्दी होता है। हरी खाद की फसलें बुआई के 35-40 दिनों में पलटने योग्य हो जाती हैं। अत: खरीफ में धान की रोपाई के समय को ध्यान में रखते हुए ढैंचा, सनई और लोबिया की बुआई करें।

- हरी खाद की विभिन्न फसलों की उत्पादन क्षमता जलवायु, फसल वृद्धि तथा कृषि क्रियाओं पर निर्भर करती है।

ग्रीष्मकालीन जुताई

- गर्मी की जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करने पर खेत की मृदा ऊपर-नीचे हो जाती है। इस जुताई से जो ढेले पड़ते हैं, वह धीरे-धीरे हवा एवं बरसात के पानी से टूटते रहते हैं। इसके साथ ही जुताई से मृदा की सतह पर पड़ी फसल अवशेष की पत्तियां, पौधों की जड़ें एवं खेत में उगे हुए खरपतवार आदि नीचे दब जाते हैं, जो सड़ने के बाद खेत की मिट्टी में कार्बनिक खादों की मात्रा में बढ़ोतरी करते हैं। इससे मृदा की उर्वरता स्तर, भौतिक दशा एवं मृदा की संरचना में सुधार होता है। गर्मी की जुताई के मुख्य लाभ निम्न हैं:
- मृदा में कार्बनिक पदार्थों की बढ़ोतरी होती है।
- मृदा के पलट जाने से जलवायु का प्रभाव सुचारू रूप से मृदा में होने वाली प्रतिक्रियाओं पर पड़ता है और वायु तथा सूर्य के प्रकाश की सहायता से मृदा में उपलब्ध खनिज अधिक सुगमता से पौधे के आहार में परिणित हो जाते हैं।
- गर्मी की जुताई रोग एवं कीट नियंत्रण में सहायक है। हानिकारक कीट तथा रोगों के रोगकारक भूमि की सतह पर आ जाते हैं। और तेज धूप से नष्ट हो जाते हैं।
- गर्मी की जुताई मिट्टी में जीवाणु की सक्रियता बढ़ाती है। यह दलहनी फसलों के लिए अधिक उपयोगी है।
- गर्मी की जुताई खरपतवार नियंत्रण में भी सहायक है। खरपतवारों के बीज गर्मी एवं धूप से नष्ट हो जाते हैं।
- बारानी परिस्थितियों में वर्षा के पानी का अधिकतम संचयन करने के लिए गर्मी की गहरी जुताई करना नितान्त आवश्यक है। शोधों से यह सिद्ध हो चुका है कि गर्मी की जुताई करने से 31.3 प्रतिशत बरसात का पानी खेत में समा जाता है।
- गर्मी की जुताई करने से मृदा कटाव में 66.5 प्रतिशत तक की कमी आती है।
- गर्मी की जुताई से गोबर की खाद एवं अन्य कार्बनिक पदार्थ भूमि में अच्छी तरह मिल जाते हैं, जिससे पोषक तत्व शीघ्र ही फसलों को उपलब्ध हो जाते हैं।

सब्जी फसलें

कद्दूवर्गीय फसलें

- कद्दूवर्गीय फसलें जैसे-लौकी, कद्दू, तोरई, काशीफल, ककड़ी, तरबूज एवं खरबूजा इत्यादि की बुआई

मृदा सौरीकरण एवं समतलीकरण

गर्मी की जुताई करने से खरीफ की बुआई के लिए खेत की तैयारी आसान एवं कम समय में हो जाती है। यदि जुताई संभव न हो तो केवल मृदा सौरीकरण भी किया जा सकता है। इसके लिए भूमि की सतह पर पॉलीथीन की एक चादर बिछा दें। इससे भूमि की गर्मी से परत के नीचे का तापमान बहुत बढ़ जाता है और रोगों के कीटाणु, अनावश्यक बीज, कीट के अंडे आदि सब नष्ट हो जाते हैं। खेत समतल नहीं है तो इस माह लेवलर की सहायता से खेतों का समतलीकरण कर लें। इससे सिंचाई के समय पानी खेत में समान रूप से लगाया जा सकेगा और पानी की बचत भी की जा सकती है।

मृदा परीक्षण

- मृदा परीक्षण करवाने का यह उपयुक्त समय है। मृदा की जांच या परीक्षण इसमें उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा, पीएच मान और सूक्ष्म जीवों की संख्या निर्धारित करने के लिए नमूने का एक रासायनिक जांच या परीक्षण है। परीक्षण करवाकर मृदा की वर्तमान स्थिति को जानकर उसकी स्थिति सुधारने के लिए उचित कदम ले सकते हैं। सही अनुपात में आवश्यक पोषक तत्वों का चयन भी कर सकते हैं। हम अपनी मृदा के अनुसार फसलचक्र का चयन कर ज्यादा लाभ प्राप्त कर सकते हैं। मृदा नमूना लेने की प्रक्रिया निम्न प्रकार से हैं:

- एक हैक्टर खेत से लगभग 15 स्थानों से 15 सें.मी. गहराई तक खुरपी की सहायता से मृदा नमूने इकट्ठे करें।
- मृदा का नमूना खेत के किनारे किसी खाद वाले स्थान, छायादार स्थान एवं सिंचाई की नाली के पास से न लें।
- एक खेत से इकट्ठे किये गये नमूनों की मृदा आपस में अच्छी तरह मिलाकर अन्त में उसमें से 500 ग्राम मृदा एक कपड़े की थैली में भरकर पूरे विवरण के साथ प्रयोगशाला में भेजें।
- नमूनों की जांच के उपरांत मृदा स्वास्थ्य कार्ड अवश्य प्राप्त करें, ताकि अगली खरीफ की फसल में मृदा स्वास्थ्य के आधार पर संस्तुत खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग किया जा सके।

मार्च एवं अप्रैल में हो चुकी होती है। इस समय हरी फसल कम होती है और कीटों के लिए मेजबान पौधे कम होते हैं। इस कारण से कीटों का प्रकोप बढ़ जाता है। अतः इनके नियंत्रण का विशेष ध्यान रखना चाहिए। एक बार पौध अवस्था पर फसल स्वस्थ रहती है तो आगे भी अच्छी उपज मिलने की पूरी संभावना रहती है।

- **सिंचाई:** सिंचाई सामान्यतया गर्मियों में खासकर मई में 5-8 दिनों के अंतराल पर करते रहना चाहिए।
- **कीट प्रबंधन:** फल मक्खी और लाल कद्दू कीट प्रमुख हैं, इसके नियंत्रण के लिए कार्बोरिल 50 डब्ल्यू पी 2 ग्राम/लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। फल मक्खी के नियंत्रण के लिए कार्बोरिल 2 ग्राम/लीटर की दर से छिड़काव करना चाहिए। ध्यान रखें कि कीटनाशी का छिड़काव फलों के टूटने के बाद ही करें।

किस्मों का चयन एवं बीज दर

बैंगन (गोल आकार) की उन्नत प्रजाति जैसे-पूसा संकर-6, पूसा संकर-9, पूसा उत्तम, पूसा उपकार एवं लम्बे आकार के बैंगन की उन्नत प्रजाति जैसे-पूसा संकर-5, पूसा संकर-20, पूसा श्यामला, पूसा कौशल एवं पूसा क्रांति एवं गोल एवं छोटे आकार के बैंगन की उन्नत प्रजाति जैसे-पूसा अंकुर एवं पूसा बिंदू आदि प्रमुख हैं। अच्छी जमाव क्षमता वाला 400 ग्राम तथा 250-300 ग्राम संकर किस्मो का बीज/हैक्टर के हिसाब से पर्याप्त होता है।

भिंडी

- **सिंचाई:** भिंडी की बुआई फरवरी एवं मार्च में हो जाती है। इस समय यह फसल पुष्पण और फली विकास अवस्था में होती है। इस समय सिंचाई 10-12 दिनों के अंतराल पर की जाती है।

- **रोग प्रबंधन:** भिंडी की फसल में लगने वाले मोजैक तथा पर्ण कुंचन रोग सफेद मक्खी द्वारा फैलता हैं। मोजैक में पत्तियों पर छोटे-छोटे पीले रंग के चितकबरे धब्बे बनते हैं। पत्तियों की शिराओं का रंग पीला पड़ जाता है। लीफ कर्ल में पत्तियों का हरा भाग छिछले गड्ढों का रूप ले लेता है। इसके नियंत्रण के लिए एसिटामाइप्रिड 3 ग्राम/10 लीटर पानी या कॉन्फिडोर-200 एस.एल. (0.3-0.5 मिली/लीटर पानी की दर से) बुआई के 20 दिनों बाद तथा आवश्यकतानुसार 15 दिनों के अंतराल पर प्रयोग करें। स्पाइरोमसीफेन दवा की 2 ग्राम/लीटर पानी में घोल बनाकर दूसरा छिड़काव करें।
- **कीट नियंत्रण:** फली तथा तना छेदक कीट फलियों में छेद कर अंदर बीज को हानि पहुंचाता है तथा फली खाने योग्य नहीं होती है। पौधे की अंतिम कोमल शाखाओं में छेद कर देते हैं। इससे पौधे का ऊपरी हिस्सा मुरझा जाता है। इस कीट के नियंत्रण के लिए एमामेक्टिन बेन्जोएट (2 ग्राम/10 लीटर) या स्पिनोसैड 1 मिली/लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें और अंडा परजीवी ट्राइकोग्रामा की 50,000 कार्ड की मदद से खेत में छोड़ने से इस कीट का प्रकोप काफी कम हो जाता है। भिंडी की पत्ती को काटने वाले कीट को नष्ट करने के लिए साइपरमेथ्रिन 0.5 मिली/लीटर पानी में घोलकर 15 दिनों के अंतराल पर छिड़कना चाहिए।

लौकी

- **रोग प्रबंधन:** मृदु रोमिल आसिता, चूर्णिल आसिता और जड़ विगलन फफूंदी से फैलने वाले रोग हैं। इनकी रोकथाम के लिए रोगग्रस्त फसल अवशेषों को निकालकर नष्ट कर देना चाहिए। मृदु रोमिल आसिता के लिए मैंकोजेब 2.5 मिली/लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। कद्दूवर्गीय फसलों में बुकानी रोग के नियंत्रण के लिये कैराथैन 1 लीटर या 3 कि.ग्रा. घुलनशील गंधक/हैक्टर की दर से 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

अदरक

- **बुआईः** अदरक की बुआई के लिए 16-18 क्विंटल प्रकंदों की प्रति हैक्टर आवश्यकता होती है। अदरक की बुआई 30×20 सें.मी. की दूरी पर एवं 4 सें.मी. की गहराई पर करनी चाहिए और बुआई से पहले अदरक के 20-25 ग्राम टुकड़ो को कॉपर ऑक्सीक्लोराइड के 0.3 प्रतिशत के घोल में 10 प्रतिशत तक उपचारित करना चाहिए।
- **किस्मों का चयनः** अदरक की प्रजाति जैसे-सुप्रभा, सुरभि, सुरूचि एवं हिमगिरी उपयुक्त उन्नत प्रजातियां हैं। अदरक के लिए खेत की तैयारी के समय 75 क्विंटल नाडेप खाद या 200-250 क्विंटल सड़ी गोबर की खाद के साथ 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 100 कि.ग्रा. पोटाश बुआई से पहले अन्तिम जुताई के समय प्रति हैक्टर की दर से मिट्टी में मिला दें।
- अदरक, हल्दी एवं सूरन की बुआई करने के बाद खेत को सूखी पुआल या घास-फूस या सूखी पत्तियों से ढक दें। इससे खेत में नमी बनी रहे और अंकुरण अच्छा हो सके। इस माह सूरन की बुआई का कार्य पूरा कर लें

अदरक

मूली

- मूली की किस्म पूसा चेतकी गर्मी के मौसम के लिए उपयुक्त है और 45-50 दिनों में तैयार हो जाती है। इसकी बुआई अप्रैल से अगस्त तक की जाती है।

टमाटर, बैंगन एवं मिर्च

- **जलवायु एवं मृदाः** यह ग्रीष्म ऋतु की फसल है तथा अच्छी उपज के लिए 21-30 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त है। अच्छे जल निकास वाली बलुई दोमट मृदा इसकी खेती के लिए उपयुक्त है। भूमि का पी-एच मान 6-7 के बीच हो।
- **बुआईः** बैंगन की मई-जून माह बीज बुआई तथा जून से मध्य जुलाई में रोपाई की जाती है। बुआई के बाद नर्सरी बेड को पुआल/घास से ढककर रखने से बीज अंकुरण में वृद्धि होती है। नर्सरी में बीज बुआई के तुरन्त बाद हजारे से सिंचाई करनी चाहिए। मई माह के दूसरे सप्ताह में मिर्च की नर्सरी लगा सकते हैं। इसके 400 ग्राम बीज एक एकड़ खेत में पौध रोपण के लिए काफी होता है।
- उन्नत प्रजाति जैसे पूसा सदाबहार एवं पूसा ज्वाला 80-100 क्विंटल हरी मिर्च देती है। रोगों की रोकथाम के लिए 400

टमाटर

हल्दी

- **बुआईः** हल्दी के लिए 15-20 क्विंटल प्रकंदों की प्रति हैक्टर बुआई के लिए आवश्यकता होती है। हल्दी की बुआई 40×20 सें.मी. की दूरी पर एवं 4 सें.मी. की गहराई पर करें और बुआई से पहले हल्दी के 20-25 ग्राम के टुकड़ो को कॉपर ऑक्सीक्लोराइड के 0.3 प्रतिशत के घोल में उपचारित करने के बाद बुआई करनी चाहिए।

- **किस्मों का चयनः** हल्दी की प्रजाति जैसे-कृष्णा, राजेन्द्र, अमलापुरम एवं मधुकर उपयुक्त हैं।
- **पोषक तत्व प्रबंधनः** हल्दी के लिए खेत की तैयारी के समय 75 क्विंटल नाडेप खाद या 200-250 क्विंटल सड़ी गोबर की खाद के साथ 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 80 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 80 कि.ग्रा. पोटाश बुआई से पहले अन्तिम जुताई के समय प्रति हैक्टर की दर से मिट्टी में मिला दें।

बैंगन

ग्राम बीज को एक ग्राम कैप्टॉन या थीरम से उपचारित करें।

- **पोषक तत्व प्रबंधन:** खेत की तैयारी के समय 25 टन/हैक्टर की दर से अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर या कम्पोस्ट की खाद मिट्टी में मिला दें। रोपाई से पहले लगभग 150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 60 कि.ग्रा. पोटाश तथा नाइट्रोजन की आधी मात्रा अंतिम जुताई के समय मिट्टी में मिला दें तथा बाकी आधी नाइट्रोजन की मात्रा को फूल आने के समय प्रयोग करें।
- **खरपतवार नियंत्रण:** इसके लिए पेण्डीमेथिलीन (स्टॉम्प) 3 लीटर प्रति हैक्टर की दर से पौध रोपाई से पहले प्रयोग करें और इस बात का ध्यान रखें कि छिड़काव से पहले जमीन में नमी होनी चाहिए। निराई-गुड़ाई द्वारा भी खेत में खरपतवार नियंत्रण करना संभव है। रोपाई से पहले पौधे की जड़ों को कॉन्फिडोर कीटनाशी द्वारा 1 लीटर पानी में घोलकर उपचारित करना चाहिए।
- मार्च में रोपे गये टमाटर, बैंगन एवं मिर्च में आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें तथा टमाटर एवं मिर्च में 35 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की दर से रोपाई के लगभग 45-50 दिनों बाद दूसरी टॉप ड्रेसिंग करें।
- टमाटर के फलों को सफेद होने से बचाने के लिए सिंचाई का ठीक प्रबंध के साथ-साथ, 3-4 पंक्तियों के बीच में सनई या ढैंचा लगाएं और ऐसी किस्मों का चयन करें जिसमें अधिक पत्तियां होती है।
- **कीट प्रबंधन:** अगर खेत में तम्बाकू की सूंडी का प्रकोप हो तो फेरोमोन ट्रेप लगाकर कीटों को इकट्ठा कर, नष्ट कर देना चाहिए। सफेद मक्खी रस चूसक, वायरस को फैलाती है। इसके नियंत्रण के लिए कॉन्फिडोर 0.3 मिली/लीटर पानी में घोलकर 30 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए।
- टमाटर एवं बैंगन में फल छेदक सूंडी से बचाव हेतु फलों की तुड़ाई के बाद डेल्टामेथ्रिन 2.8 ईसी 1.0 मिली/लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। अच्छी पैदावार के लिए टमाटर में निराई गुड़ाई करते रहें और पौधे के पास मिट्टी चढ़ाएं।
- बैंगन में तना और फलबेधक एक गंभीर कीट है। इसके नियंत्रण के लिए 10 मीटर के अंतराल पर 100 फेरोमोन ट्रेप प्रति हैक्टर लगाकर वयस्क नर को पकड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
- पेड़ी फसल न लें। इसमें फल छेदक का प्रकोप अधिक होता है। ग्रसित प्ररोहों एवं फलों को निकालकर भूमि में दबा दें। नीम बीज अर्क (5 प्रतिशत) या बी.टी. 1 ग्राम/लीटर या स्पिनोसेड 45 एस.सी. 1 मिली/4 लीटर या कार्बेरिल 50 डब्ल्यू.पी. 2 ग्राम/लीटर या डेल्टामेथ्रिन 1 मिली/लीटर का फूल आने से पहले इस्तेमाल करें।
- **अन्य पौध संरक्षण:** अधिक बढ़ने वाली किस्मों को उपयुक्त सहारा देने के लिए स्टैकिंग करें। टमाटर के फलों को फटने से बचने के लिए सिंचाई का उपयुक्त प्रबंध और 0.3-0.4 प्रतिशत बोरॉन का छिड़काव करना चाहिए।

फूलगोभी

- **किस्मों का चयन:** फूलगोभी की अगेती उन्नत प्रजाति जैसे-पूसा कार्तिक संकर, पूसा दीपाली, पूसा कार्तिकी, पूसा अश्वनी, पूसा मेघना आदि प्रमुख हैं।
- **बीज दर एवं बुआई:** अच्छी जमाव क्षमता वाला 500-600 ग्राम तथा संकर किस्मों के लिए 350-400 ग्राम बीज/हैक्टर की दर से पर्याप्त होता है। फूलगोभी की अगेती बुआई का समय मध्य मई से जून में बीज बुआई तथा 5-6 सप्ताह वाली पौध की रोपाई की जाती है।
- बीज उपचार के लिए बाविस्टीन या कैप्टॉन 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से या ट्राइकोडर्मा 5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज के हिसाब से करें। नर्सरी क्यारी छायादार एवं पर्याप्त नमी वाले स्थान पर बनाने चाहिए। क्यारी का आकार $3.0 \times 0.45 \times 0.15$ मीटर तथा 100 वर्ग मीटर नर्सरी क्यारी प्रति हैक्टर क्षेत्र के लिए पर्याप्त होता है।
- **पोषक तत्व प्रबंधन:** खेत की तैयारी के समय 25-30 टन/हैक्टर की दर से अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद मिट्टी में मिला दें। रोपाई से पहले 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 100 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 60 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर तथा खेत की अंतिम तैयारी के समय आधी मात्रा में नाइट्रोजन तथा सम्पूर्ण मात्रा में फॉस्फोरस एवं पोटाश भूमि में मिला दें।
- शेष नाइट्रोजन को बराबर दो हिस्सों में बांट कर एक हिस्सा रोपाई के एक महीने बाद निराई-गुड़ाई के साथ डालें तथा दूसरा हिस्सा फूल बनने की स्थिति में पौधों को मिट्टी चढ़ाते समय मिलाएं।

फूलगोभी

- **खरपतवार नियंत्रण एवं जल प्रबंधन:** इसके लिए रोपाई से पहले बेसालीन 2.5 लीटर या स्टॉम्प 3.3 लीटर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव कर हल्की सिंचाई करें। अगेती फसल में रोपाई के तुरन्त बाद तथा उसके बाद साप्ताहिक अन्तराल पर एवं मध्यम एवं पछेती फसल में 10-15 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करें।
- **रोग प्रबंधन:** फूलगोभी की नर्सरी अवस्था में आर्द्रगलन फफूंद नामक रोग से पौधों का तना सतह के पास से गलने लगता है और पौधा मर जाता है। इसके नियंत्रण के लिए ट्राइकोडर्मा 4 ग्राम/मिली में मिलाकर बीजों को उपचारित करें या ट्राइकोडर्मा 25 ग्राम/10 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद को नर्सरी (100 वर्ग मीटर) में अच्छी प्रकार मिलायें या बाविस्टीन या कैप्टॉन 2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से बीज उपचार करें, या बाविस्टीन या कैप्टॉन 2 ग्राम/लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।
- फूलगोभी, गांठगोभी, पत्तागोभी, गाजर, मूली, पालक, मेथी एवं शलजम की बीज वाली फसलों की कटाई करें और बीजों को इतना सुखाएं कि उनमें 8 फीसदी ही नमी रहे।

बागवानी फसलें

- नए बाग लगाने के लिए गड्ढे खोद दें, ताकि धूप से कीटों और रोगों का नियंत्रण हो सके। महीने के आखिर में इन गड्ढों में आधी ऊपर वाली मृदा और आधी कम्पोस्ट में क्लोरोपायरीफॉस दवा मिलाकर पूरी तरह से ऊपर तक भर दें।

अमरूद

अमरूद की सघन बागवानी भी किसानों में काफी प्रचलित है। इसमें अमरूद को 1×2 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है। इस बात का हमेशा ध्यान रखा जाता है कि बाग में पौधे लगाने की दूरी, जलवायु, मृदा की उर्वरता एवं प्रजाति विशेष पर निर्भर करती है। अमरूद की नई बढ़वार जिस पर फूल लग रहे हो की शाखा का 3/4 भाग काटकर निकाल दें। इससे बरसात की फसल तो कम हो जायेगी परन्तु रबी की फसल में वृद्धि हो जायेगी। अमरूद में 10-15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करतें रहें। पुष्पण अवस्था पर 10 प्रतिशत यूरिया का छिड़काव 10-15 दिनों के अंतराल पर करने से जायद के मौसम में 3-8 गुना अधिक फसल प्राप्त होती है। अमरूद की फसल में मार्च से मई के महीने में फूल आते हैं जिसकी फसल अगस्त से लेकर मध्य अक्टूबर तक मिलती रहती है। अमरूद में बहार नियंत्रण के लिए 10 प्रतिशत यूरिया के घोल का छिड़काव अप्रैल एवं मई के महीने में फूलों पर करें। मई महीने की छंटाई के बाद उभरने वाली नई शाखाओं में सर्दियों की फसल के लिए अधिक फल देने की क्षमता होती है। तेज धूप से झुलस को रोकने के लिए पेड़ों के बड़े अंगों और तनों पर कॉपर तथा चूने का लेप लगाएं।

आम

- गर्मी के कारण उचित जल प्रबंधन आवश्यक होता है। अत: बागवानी फसलों में 10-12 दिनों के अंतराल पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिए तथा जरूरत के हिसाब से कटाई-छंटाई करते रहना चाहिए।
- आम, अमरूद, पपीता, लीची, अंगूर, आंवला, बेर, नाशपाती, आलूबुखारा एवं नीबू में आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें।

आम

- आम में फुदका कीट नियंत्रण के लिए फलों के मटर के आकार की

अवस्था पर मोनोक्रोटोफॉस 1.25 मिली/लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। दासी मक्खी के नियंत्रण के लिए कार्बोरिल 0.2 प्रतिशत के साथ 0.1 शर्करा और 0.1 प्रतिशत मैलाथियॉन मिलाकर ट्रैप बनाकर लटकाएं।

- खर्रा या पाऊडरी रोग के लिए 0.2 प्रतिशत घुलनशील गंधक का प्रयोग करें। कोइलिया फल विकार के लिए बोरेक्स 1 प्रतिशत का छिड़काव फल लगने पर सिंचाई के साथ करें। आम के फलों को ऊतक क्षय रोग से बचाव के लिए 8 ग्राम बोरेक्स को 1 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। फलों के गिरने से रोकने के लिए वृद्धि हार्मोन एनएए 20 पीपीएम का छिड़काव करें।

अंगूर

- इसके बाग में गर्मी के मौसम में एक सप्ताह के अन्तराल पर सिंचाई करें। एन्थ्रेक्नोज एवं सर्कोस्पोरा पत्ती धब्बा रोगों की रोकथाम के लिए फॉइटालोन या ब्लाइटॉक्स का 0.3 प्रतिशत का छिड़काव अर्थात 750 ग्राम 250 लीटर पानी में प्रति एकड़ मई के प्रथम सप्ताह में छिड़काव करें और 15 दिनों के अन्तराल पर सितम्बर तक छिड़काव करते रहें।

केला

- रोपित केला हेतु 1.5 मीटर की दूरी पर 50×50 सें.मी. के गड्ढे बना लें। प्रत्येक गड्ढे को 10 कि.ग्रा. सड़ी गोबर/कम्पोस्ट की खाद, 10 ग्राम कार्बोफ्यूरॉन, 50 ग्राम फॉस्फोरस तथा खेत के ऊपर की मिट्टी मिलाकर गड्ढों को भरें। रोपित केले में 25 ग्राम नाइट्रोजन पौधे से 50 सें.मी. दूर गोलाई में डालकर मिट्टी में मिलाकर सिंचाई करें।

केले का स्वस्थ पौधा

लीची

लीची के पौधों में फल मई-जून में पककर तैयार हो जाते हैं। फल पकने के बाद गहरे गुलाबी या लाल रंग के हो जाते हैं और लीची के फलों की तुड़ाई मई से जुलाई तक होती है। फलों का फटना लीची की एक प्रमुख समस्या है, जो फल की बढ़वार के समय भूमि में नमी की कमी तथा तेज गर्म हवाओं के चलने के कारण होता है। भूमि में नमी बनाये रखने के लिए फल लगने से लेकर पकने तक बाग में हल्की सिंचाई करते रहें। साथ ही फल विगलन रोग से बचाव हेतु फलों को पकने से 20-25 दिनों पूर्व बाविस्टीन की 10 ग्राम मात्रा को 10 लीटर पानी में घोलकर फलों पर छिड़काव करें।

औषधीय फसलें

मेंथा

- मेंथा की फसल में 40-50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की तीसरी एवं अंतिम टॉप ड्रेसिंग अवश्य करें। मेंथा फसल की कटाई 100-120 दिनों पर, जब पौधों में कलियां बनने लगें तब करें और दूसरी कटाई, पहली कटाई के 70-80 दिनों पर करें। पौधों की कटाई मृदा की सतह से 4-5 सें.मी. ऊंचाई पर करनी चाहिए। कटाई के बाद पौधों को 2-3 घन्टे तक खुली धूप में छोड़ दें। कटाई के बाद कटी फसल को छाया में हल्का सुखाकर जल्दी आसवन विधि द्वारा यंत्र से तेल निकाल लें।

सर्पगंधा

- इसकी नर्सरी मई माह में डाली जा सकती है। प्रति हैक्टर खेत की रोपाई के लिए 6-7 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है।

तुलसी एवं सफेद मूसली

- इनकी बुआई इसी माह में कर सकते हैं, जो एक फायदेमंद औषधीय फसल है। मई में रोपाई दोपहर के बाद ही करें। रोपाई के बाद तुरंत खेत में सिंचाई कर देनी चाहिए। हल्की वर्षा वाले दिन तुलसी एवं सफेद मूसली की रोपाई के लिए बहुत उपयुक्त हैं। एक हैक्टर क्षेत्रफल के लिए 750 ग्राम से 1 कि.ग्रा. तुलसी का बीज पर्याप्त होता है। इसकी रोपाई पंक्ति से पंक्ति एवं पौधे से पौधे की दूरी 60×30 सें.मी. की दूरी पर करनी चाहिए।

- कागजी नीबू में फल फटने की समस्या के निराकरण हेतु पोटेशियम सल्फेट के 4 प्रतिशत का घोल पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

सगंधीय पौधे

- रजनीगंधा में एक सप्ताह के अंतराल पर सिंचाई एवं दो सप्ताह के अंतराल पर निराई-गुड़ाई करते रहना चाहिए जिससे खेत में खरपतवार न बढ़ने पायें, जो फसल के लिए हानिकारक होता है। उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में कन्द लगाने का उचित समय फरवरी के अन्तिम सप्ताह से लेकर जुलाई तक है।
- देर से लगाने पर व्यवसाय के योग्य पुष्प डंडियां तो मिल जाती हैं परन्तु नवजात कन्द कम बनते हैं। पहाड़ी इलाकों में कन्द रोपण का उचित समय मई से जून तक रहता है। कन्द को पंक्तियों में लगाना ठीक रहता है।
- पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30-40 सें.मी. एवं पंक्तियों में कन्द से कन्द की दूरी 15-20 सें.मी. रखनी चाहिए। एक एकड़ रजनीगंधा लगाने हेतु लगभग 50-60 हजार कन्द की आवश्यकता होती है।
- अच्छी पुष्प डंडियां प्राप्त करने के लिए 3 से 5 सें.मी. व्यास वाले कन्द लगाना अच्छा रहता है। कन्द लगाते समय खेत में नमी का रहना आवश्यक है। कन्द से कल्ले अंकुरित होकर दिखाई देने लगें, तब सिंचाई कर देनी चाहिए। समय-समय पर वातावरण के अनुसार सिंचाई करते रहें। अच्छी पैदावार के लिए खेत में नमी बनी रहनी चाहिए।
- **गुलाब** की फसल में आवश्यकतानुसार सिंचाई एवं निराई-गुड़ाई करते रहें।

गुलाब

- **चाइना एस्टर, गेंदे** तथा **कॉर्नेशन** में शीर्ष नोचन तथा **लिलियम** में फूलों की तुड़ाई शुरू करें।
- पुष्प वाले पौधों में कीट या रोग का प्रकोप हो तो 0.2 प्रतिशत फफूंदीनाशक कैप्टॉन या बाविस्टिन और 0.2 प्रतिशत कीटनाशक दवा-रोगोर, मेटासिस्टॉक्स आदि का घोल बनाकर 20-25 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करते रहें।
- **ग्लैडियोलस** की खेती में सिंचाई लगभग 10 से 12 दिनों के अंतराल पर करनी चाहिए। ध्यान दें कि जब कंद जमीन से निकाल रहे हों, तब उनमें 2 से 3 सप्ताह तक पानी रोक दें। इस तरह पौधों का विकास अच्छा होता है।
- **डेफोडिल, नरगिस** में कन्द से कल्ले अंकुरित होकर दिखाई दें, तो सिंचाई कर देनी चाहिए। अच्छी उपज लेने के लिए खेत में नमी बनी रहनी चाहिए। रोग या कीट का प्रकोप हो तो 0.2 प्रतिशत बाविस्टिन और 0.2 प्रतिशत रोगोर या मेटासिस्टॉक्स आदि का घोल बनाकर 20-25 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करते रहें।

रजनीगंधा

कृषि कार्यों के लिए आधुनिक उपकरण

प्याज के पौधों के लिए ट्रैक्टरचालित आठ-पंक्ति वाला ट्रांसप्लांटर

सूखे, अच्छी तरह से तैयार और उपयुक्त ढंग से समतल किए गए खेतों में प्याज के पौधों की रोपाई के लिए ट्रैक्टरचालित आठ-पंक्ति वाला स्वचालित ट्रांसप्लांटर विकसित किया गया। यह 150 मि.मी. की पंक्ति के अंतराल के साथ एक साथ आठ पंक्तियों में पौध लगाता है। इसका अंकुर मीटरिंग तंत्र औसतन 60 प्रति मिनट की दर से पौधों को एक-एक करके एक सीधी दिशा में कूड़ में छोड़ता है। यह मशीन 45-60 दिनों पुराने धुली हुई जड़ वाली प्याज के पौधों को 4-8 मि.मी. के नेक व्यास के साथ प्रत्यारोपित करने के लिए तैयार की गई है। गेज व्हील-कम-ट्रांसपोर्ट व्हील का उपयोग करके प्रत्यारोपण की गहराई को समायोजित किया जा सकता है। परीक्षण के परिणामों ने 100±11 मि.मी. की एकसमान पौधे की दूरी दिखाई, जिसमें 78 प्रतिशत एकल, 9 प्रतिशत दोहरे, 12 प्रतिशत चूक और कोई नुकसान नहीं हुआ। ट्रांसप्लांटर 0.6 कि.मी./घंटा की गति से 75 प्रतिशत दक्षता के साथ संचालित होता है, जो 2 मीटर पट्टी (1.2±0.8 मीटर क्यारियों के बीच) का आवरण करता है तथा इसकी प्रभाव क्षेत्र क्षमता 0.11 हैक्टर/घंटा है।

अंतर-फसल के लिए उपयुक्त मेक्ट्रोनिक-चालित प्लांटर

अंतर-फसल के लिए उपयुक्त मेक्ट्रोनिक-चालित प्लांटर की पांच-पंक्ति इकाई की 2 से 16 मि.मी. तक के बीज

आकार और 100 से 600 मि.मी. तक के बीज-से-बीज के अंतर वाली फसलों की एक विस्तृत श्रृंखला की एक साथ मीटरिंग और बुआई करके अंतर-फसल की सुविधा के लिए विकसित किया गया। यह वास्तविक समय में प्लांटर की आगे की गति को समझ सकता है और वांछित पूर्व-निर्धारित बीज-से-बीज के अंतर को बनाए रखने के लिए मीटरिंग सेल की घूर्णिल गति को स्वचालित रूप से समायोजित कर सकता है। यह अंतर-फसल के रूप में विभिन्न बीज आकारों वाली फसलों के किसी भी तीन संयोजनों जैसे कि अरंडी के साथ मूंग, अरंडी के साथ लोबिया और अरहर के साथ मूंग आदि की एक साथ बुआई के लिए उपयुक्त है। अंतर-फसल के रूप में अरंडी के साथ मूंग, अरंडी के साथ लोबिया तथा अरहर के साथ मूंग की बुआई के लिए खेत परीक्षण किए गए। लुप्त सीमा 1.57-4.0 प्रतिशत के बीज पाई गई।

छोटे ट्रैक्टरचालित समायोज्य गन्ना डिट्रैशर

गन्ने की फसल की छिलाई एक श्रम और समय लेने वाला काम है। स्थिर डिट्रैशिंग रोलर्स के कारण कलियां क्षतिग्रस्त हो जाती हैं और रोलर्स के एक दिशात्मक घुमाव के कारण कचरा अक्सर रोलर इकाइयों में उलझ जाता है। इस कार्य के दौरान नुकसान

को कम करने के लिए विकसित आदि प्रारूप में रोलर को द्वि-दिशात्मक घुमाव और समायोज्य गति प्रदान की गई है। फील्ड संचालन की सुविधा परीक्षणों के दौरान, 1.50 मीटर खड़े गन्ने की छिलाई के लिए 8 मीटर/सेकेंड की रोलर गति और जमीन से 600 मि.मी. की आदर्श ऊंचाई और फील्ड क्षमता 0.3-0.4 हैक्टर/घंटा थी और छिलाई दक्षता 87 प्रतिशत थी परिचालन लागत रुपये 2500/हैक्टर थी, इससे 66 प्रतिशत की बचत हुई।

ट्रैक्टरचालित ब्रश-प्रकार का कपास हार्वेस्टर

कम लागत वाला स्वदेशी ब्रश और रबड़ बैट-प्रकार का कपास स्ट्रिपर खुले कपास के गोले से कपास को अलग करने के लिए तैयार और विकसित किया गया था। इसमें तीन ब्रश स्ट्रिप्स और तीन रबड़ बैट के

साथ काउंटर-रोटेटिंग रोलर्स की एक जोड़ी होती है। एक अपकेन्द्री ब्लोअर का उपयोग दोनों स्क्रू ऑगर के डिलीवरी सिरों से बीज को एक एयर डक्ट के माध्यम से कपास भंडारण टैंक तक पहुंचाने के लिए किया जाता है। मशीन की प्रभावी फील्ड क्षमता 0.1 हैक्टर/घंटा है, जिसमें 1.35 कि.मी./घंटा की आगे की गति पर 80 प्रतिशत फील्ड दक्षता है। इसकी बिनाई दक्षता 29 प्रतिशत अपशिष्ट के साथ 89.8 प्रतिशत है। मशीन से शुद्ध बीज कपास उत्पादन 150 से 217 कि.ग्रा./हैक्टर तक है। ■

स्रोत: भाकृअनुप वार्षिक रिपोर्ट 2024-2025

मानवरहित चाय पत्ती की तुड़ाई हेतु उच्च-निकासी वाहन

चाय पत्ती की तोड़ने और इनकी छंटाई के कार्यों के लिए एक स्वदेशी, स्वचालित, हाइड्रॉलिक रूप से संचालित उच्च-निकासी वाहन विकसित किया गया। इसके घटकों में हाइड्रॉलिक रूप से संचालित ट्रांसमिशन, कूलिंग सिस्टम डिफरेंशियल और डिस्क-टाइप नेगेटिव ब्रेक प्रणाली शामिल हैं। इसमें 1.4 मीटर की धरातल ऊंचाई और ट्रैक की चौड़ाई है, जिसे 1.4 से 2 मीटर के बीच समायोजित किया जा सकता है। परिचालन की अधिकतम तैयार की गई ऑन-रोड गति 20 कि.मी./घंटा थी, जिसमें 4 मीटर का घुमाव क्षेत्र था।

पंजीकरण संख्या 14252/57 पंजीयक, समाचार पत्र, भारत सरकार
दिल्ली पोस्टल पंजीकृत संख्या DL(C)-12/1145/10-12
ISSN 0023-1088
मूल्य: ₹30

डा. अनुराधा अग्रवाल, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स चन्दु प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली-110092 से लेजरटाईपसैट एवं मुद्रित। सम्पादक: सुनीता अरोड़ा